चन्दामामा
दिसंबर १९९७

CHANDAMAMA

भारत में सर्वाधिक बिकने वाले कॉमिक्स
डायमण्ड कॉमिक्स
खतरनाक डायनामाइट सीरीज
प्राण
चाचा चौधरी और हिम मानव
फौलादी सिंह और मंगोला
ताऊजी और कपाल कुण्ड
बेताल पच्चीसी-2
राजन इकबाल और गैंगस्टर
डायमण्ड कामिक्स डाइजेस्ट
फैन्टम-73
मैण्ड्रेक-60
जेम्स बाण्ड-63
अंकुर बाल बुक क्लब के सदस्य बनें और बचायें रु. 200/- वार्षिक
अंकुर बाल बुक क्लब घर बैठे डायमण्ड कॉमिक्स पाने का सबसे सरल तरीका है। आप गांव में हैं या ऐसी जगह जहाँ डायमण्ड कॉमिक्स नहीं पहुंच पाते। डाक द्वारा वी.पी.पी. से हर माह डायमण्ड कॉमिक्स के 6 नये कॉमिक्स पायें और मनोरंजन की दुनिया में खो जाये साथ ही ढेरों इनाम पायें।
हर माह छः कॉमिक्स (48/- रु. की) एक साथ मंगवाने पर 4/- रुपये की विशेष छूट व डाक व्यय फ्री (लगभग 7/-) लगातार 12 वी.पी. छुड़ाने पर 13वीं वी.पी. फ्री।
1 वर्ष में महीने — बचत (रु.) — कुल बचत (रु.)
12 — 4/- (छूट) — 48.00
12 — 7/- (डाक व्यय) — 84.00
1 — 48/- (13वीं वी.पी. फ्री) — 48.00
सदस्यता प्रमाण पत्र व अन्य आकर्षक 'उपहार', स्टिकर और 'डायमण्ड पुस्तक समाचार' फ्री — 20.00
200.00
सदस्य बनने के लिए आप केवल संलग्न कूपन को भरकर भेजें और सदस्यता शुल्क के 10 रु. डाक टिकट या मनीआर्डर के रूप में अवश्य भेजें। इस योजना के अन्तर्गत हर माह 20 तारीख को आपको वी.पी. भेजी जायेगी जिसमें छः कॉमिक्स होंगी।
हाँ! मैं "अंकुर बाल बुक क्लब" का सदस्य बनना चाहता/चाहती हूं और आपके द्वारा दी गई सुविधाओं को प्राप्त करना चाहता/चाहती हूं। मैंने नियमों को अच्छी तरह पढ़ लिया है। मैं हर माह वी.पी. छुड़ाने का संकल्प करता/करती हूं।
नाम
पता
डाक जिला पिनकोड
सदस्यता शुल्क 10 रु. डाक टिकट/मनीआर्डर से भेज रहा/रही हूं।
मेरा जन्म दिन
नोट : सदस्यता शुल्क प्राप्त होने पर ही सदस्य बनाया जायेगा।
नई अमर चित्रकथायें
• हनुमान • साई बाबा • तुलसीदास • आजादी की लड़ाई • रविन्द्रनाथ ठाकुर
• झांसी की रानी • विष्णु की कहानियां • सम्राट अशोक • सूरदास • अकबर • सुभद्रा
डायमण्ड कामिक्स प्रा. लि. X-30, ओखला इण्डस्ट्रियल एरिया, फेज-2, नई दिल्ली-110020
महिलाओं की अपनी पत्रिका गृहलक्ष्मी

चन्दामामा

दिसंबर १९९७

एक प्रति : ६.००

वार्षिक चंदा : ७२.००

POLIO, QUIT INDIA!

Protect your child and the nation!
Participate in the mass
polio vaccination!

December 7, 1997
January 18, 1998

CALLING PARENTS!

Even if

- the child is indisposed or has diarrhoea
- the child had been given polio drops earlier

TO ENSURE CENT PER CENT PROTECTION

Remember to

Take your children (under 5) to the nearest immunisation booth / centre to receive

TWO ADDITIONAL DROPS OF THE ORAL POLIO VACCINE on National Immunisation Days

Be a part of the global Polio Eradication Campaign

You don't just have to protect, but help eradicate POLIO

चन्दामामा

संस्थापक : 'चक्रपाणी' संचालक : बी. नागिरेड्डी

भुलाया गया विद्रोह

आपकी प्रिय पत्रिका 'चन्दामामा' भारत के स्वतंत्रता-संग्राम को लेकर दो उत्तेजनीय धारावाहिक प्रकाशित कर रही है। फिर भी समय के मेघों के पीछे बहुत कुछ छिप जाता है।

ब्रिटिश अफसरों के रिकार्डों तथा आत्मकथाओं में भुलायी गयी भारत के स्वतंत्रता-संग्राम संबंधी अनेकों झांकियाँ पढ़ने को मिलती हैं। हमारे देश के विभिन्न वर्गों के लोगों ने स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए विदेशियों से संघर्ष किया था। उदाहरणार्थ १८५७ में जो ऐतिहासिक विद्रोह हुआ, उसके ठीक दो साल पहले बिरभुम प्रदेश के संथालियों ने अपने को स्वतंत्र घोषित किया। उन्होने निर्भीक हो कहा "हम भगवान की संतान हैं; हम किसी के दास नहीं हैं।" ईस्ट इंडिया कंपनी ने उन्हें कुचल डाला और उनका शोषण किया। उनकी मेहनत का एक-एक पैसा छीन लिया गया।

कंपनी के आदमियों ने पचास हाथियों को खूब शराब पिलायी और बस्ती में छोड़ दिया। हाथियों ने हज़ारों पुरुषों, स्त्रीयों तथा बच्चों को अपने पैरों तले कुचल डाला; उन्हें तहस-नहस किया। संथाली अपने हाथों में धनुष-बाण लिये कंपनी पर टूट पडे। वे बंदूकों और तोपों से मारे डाले गये। फिर भी वे पीछे नहीं हटे। जब तक आखिरी आदमी तक धराशायी नहीं हुआ तब तक वे मजबूत दीवार की तरह खड़े रहे।

वर्ष : ४७ दिसंबर १९९७ अंक : १२

एक प्रति : रु. ६/- वार्षिक चन्दा : रु ७२/-
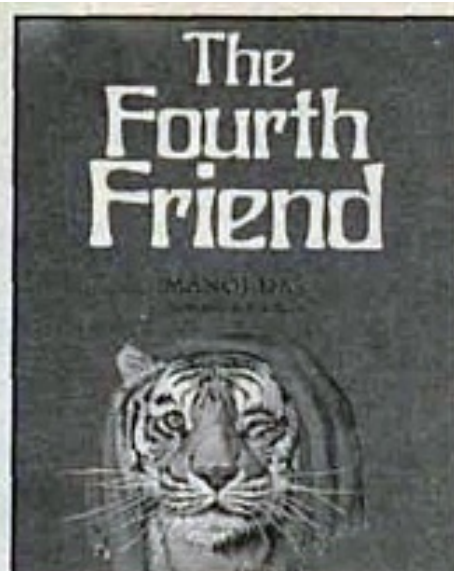
Rs. 30/-
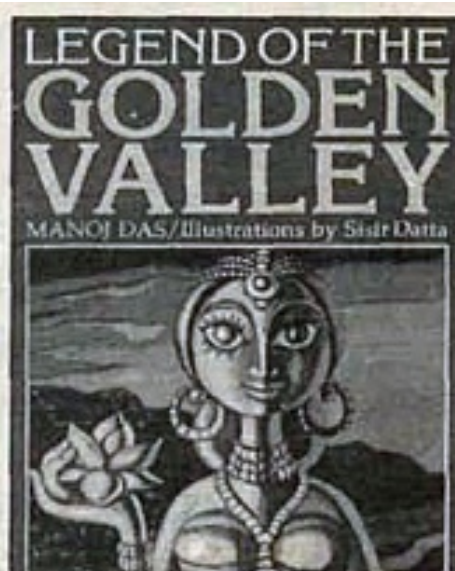
Rs. 40/-
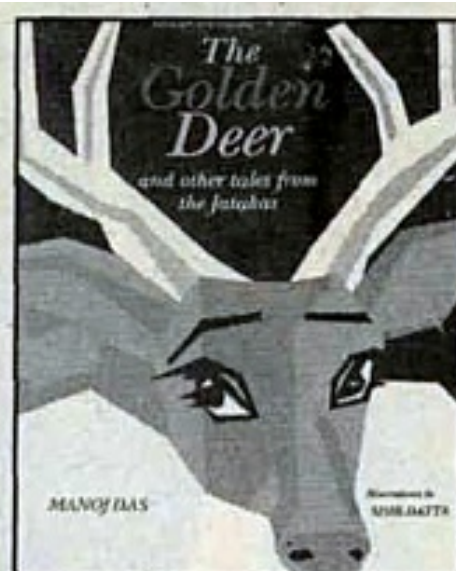
Rs. 30/-

Rs. 30/-
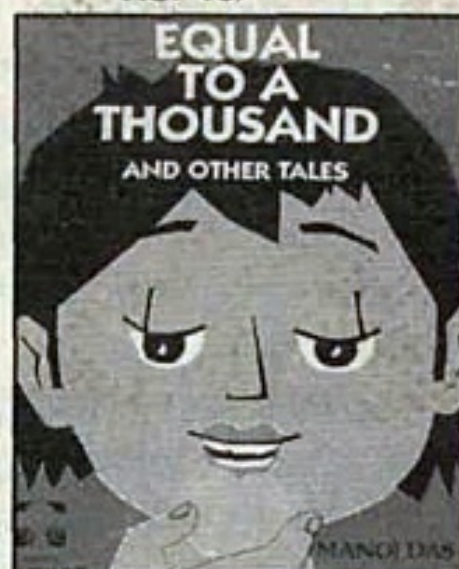
Rs. 25/-

Rs. 30/-

CHANDAMAMA BOOKS ARE ALREADY A LEGEND! THEY OPEN A NEW HORIZON ON THE WORLD OF LITERATURE FOR THE YOUNG

Added to the six titles by **Manoj Das** is the charming seventh–

WHEN THE TREES WALKED

by the inimitable story-teller **Ruskin Bond**
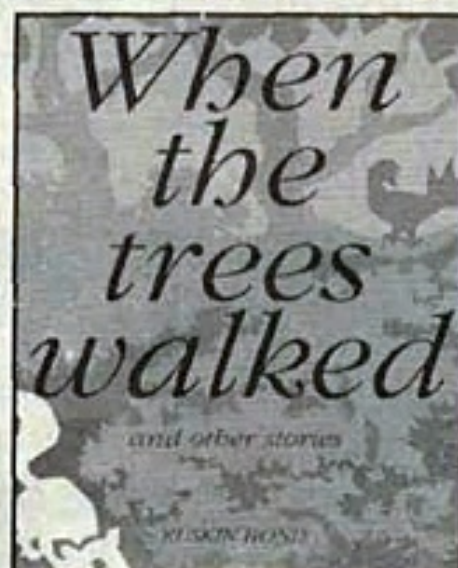
Rs. 30/-

Among the titles in the process of production are:

STORY OF KRISHNA
STORY OF RAMA
STORY OF BUDDHA

For details, write to:

CHANDAMAMA BOOKS
Chandamama Buildings
Vadápalani, Madras - 600 026.

समाचार-विशेषताएँ

पोलांड में नयी सरकार

अब फिर से पोलांड में नयी सरकार बनी है, पर यह कम्यूनिस्टों की नहीं है। सितंबर, २१ को आम चुनाव हुए। पोलांड की जनता ने 'सालिडारिटी' पार्टी को इस बार अधिकार-भार सौंपा। १९४५ में द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त हुआ। इसके बाद पोलांड में कम्यूनिस्टों ने शासन-भार अपने हाथ में लिया और लगभग चालीस सालों तक शासन चलाते रहे। उसके बाद याने अब 'सालिडारिटी पार्टी गद्दी पर बैठी।

१९३९ में जर्मनी के तानाशाह अडाल्फ हिटलर ने पोलांड को अपने अधीन कर लिया। यहीं से द्वितीय विश्व-युद्ध का प्रारंभ हुआ। तब सोवियत यूनियन व जर्मनी देशों के बीच 'पारस्परिक दुराक्रमण' संबंधी समझौता अमल में था। जर्मनी तथा जापान ने मिलकर 'याक्सिस' नामक सुदृढ़ गुट की स्थापना की। अमेरीका, इंग्लांड, फ्रांस आदि देशों ने 'मित्रपक्ष' के नाम से अपना एक गुट बनाया।

छे सालों तक यह विश्व-युद्ध जारी रहा। जर्मनी को अपनी विजय पर हद से ज्यादा नाज़ था। पुराने समझौतों को ताक़ में रखकर वह सोवियत यूनियन पर टूट पडा। इस कारण सोवियत यूनियन ने 'मित्र पक्षों' से हाथ मिलाने का निर्णय लिया। इस निर्णय के कारण यूरोप में 'याक्सिस' की विजय के अवकाशों में हेर-फेर हुए। सोवियत यूनियन ने पोलांड के साथ-साथ कुछ अन्य यूरोपीय देशों को भी जर्मनी से विमुक्त किया। 'मित्रापक्षों' की सेनाएँ पश्चिम दिशा से तथा सोवियत सेनाएँ पूर्वी दिशा से जर्मनी की राजधानी बर्लिन नगर में पहुँचीं। हिटलर ने आत्महत्या कर ली। जर्मनी दो भागों में बंटा-पश्चिम जर्मनी, पूर्व जर्मनी। नगर भी दो भागों में विभाजित हुआ। परंतु १९९० में नगर के ये दोनों भाग मिला दिये गये। अब यह जर्मनी कहकर पुकारा जाने लगा।

पोलांड की जनता ने सोवियत यूनियन के प्रति आदर की भावना दिखायी क्योंकि उनका अभिप्राय था कि उसी के कारण उन्हें स्वतंत्रता उपलब्ध हुई। पोलांड में कम्यूनिस्ट शासन की स्थापना के लिए सोवियत यूनियन ने उसे प्रोत्साहन दिया। १९४८ में वहाँ चुनाव हुए। इन चुनावों में कम्यूनिस्टों ने सत्ता अपने हाथ में ली। तीस सालों के बाद 'सालिडारिटी' ट्रेड यूनियन ने हड़तालों तथा संघर्षों के द्वारा एक आंदोलन शुरु किया। यद्यपि इस दौरान हड़ताल होते रहे, संघर्ष चलते रहे, फिर भी १९८० तक कम्यूनिस्टों के अनुकूल पक्षों ने ही शासन की बागडोर संभाली। १९८३ तक पहुँचते-पहुँचते 'सालिंडारिटी पार्टी' एक राजनैतिक शक्ति के रूप में उभर आयी। १९८९ में लेकवालेसा के नेतृत्व में कम्यूनिस्टेतर शासन की स्थापना हुई। किन्तु १९९३ में पुनः कम्यूनिस्टों का स्वागत हुआ, और 'सालिडारिटी' पार्टी अधिकार खो बैठी। लेकवालेसा ने अपने अध्यक्ष-पद से इश्तीफा दे दिया।

चार सालों के बाद मरियन किज़केलेस्की के नेतृत्व में 'सालिडारिटी' पार्टी आश्चर्यजनक रूप से शासन-भार संभालने में सफल हुई। जेर्सी बुसेक प्रधानमंत्री चुने गये।

राक्षस विवाह

पूर्व कोसल राज्य की राजधानी में भैरव शास्त्री नामक वाक्-पटु रहा करता था। उसका वाक्-चातुर्य सभी को बहुत ही आकर्षित करता था। वह अधिक पढ़-लिख नहीं पाया, फिर भी अपने चतुरता-पूर्ण संभाषणों से औरों को खूब हँसाता था। उसका एक बहनोई राजा के आस्थान के पंडितों में से एक था। ब्रह्मचारी भैरव अपने बहनोई के घर में ही रहता था।

एक दिन भैरव के बहनोई ने अपनी धर्मपत्नी से कहा ''स्वर्णचंद्रिका महाराज की इकलौती पुत्री है। महाराज उसके विवाह के प्रयत्नों में लगे हुए हैं। उनकी इच्छा है कि वैदेही के राजकुमार को अपना दामाद बनाएँ। तुम तो जानती ही हो कि वैदेही राज्य हमारे राज्य से बड़ा है, संपन्न है। अत: उन्हें संदेह है कि उस राज्य के राजा इस विवाह के लिए सम्मत होंगे अथवा नहीं।''

भैरवशास्त्री की दीदी ने कहा ''भला क्यों सम्मत नहीं होंगे। इसमें संदेह के लिए कोई गुँजाइश ही नहीं। अपने भाई भैरव को वहाँ भेजूँगी तो अपने वाक्-चातुर्य, चमत्कार-पूर्ण संभाषणों तथा हास्य-पूर्ण शब्दों का धड़ाधड़ उपयोग करके सूर्यास्त के पहले ही उन्हें विवाह के लिए मना लेगा। इस रिश्ते को पक्का करके ही लौटेगा।''

''हाँ, हाँ, शिक्षा-क्षेत्र को छोड़कर तुम्हारा भाई अवश्य ही अन्य क्षेत्रों में समर्थ है'' कहकर भैरव का बहनोई ठठाकर हँसा।

भैरवशास्त्री उनकी इस बातचीत को ग़ौर से सुन रहा था। मन ही मन उसने ठान लिया कि वैदेही जाऊँगा और इस कार्य में सफल होकर ही लौटूँगा। अगर इस कार्य में सफल हुआ तो महाराज अवश्य ही उसे मूल्यवान पुरस्कार देंगे। वह दूसरे ही दिन सबेरे-सबेरे किसी को बताये बिना वैदेही राज्य जाने

जयंती मिश्रा

निकल पड़ा। उसमें उत्साह भरा हुआ था। अपने लक्ष्य की पूर्ति की उसे पूरी आशा थी। कोसल और वैदेही राज्य के बीचों बीच घना जंगल था। प्रजा को इसका भय था कि जंगल में एक राक्षसी रहती है। इसलिए वैदेही पहुँचने के लिए घने जंगल से न जाकर एक छोटे-से जंगल से जाया करते थे। भैरवशास्त्री उस छोटे-से जंगल से ही जाने लगा। दुपहर होते-होते वह एक सरोवर के पास पहुँचा और पानी पीकर अपनी प्यास बुझायी। वह बहुत ही थक गया। एक वृक्ष के नीचे बैठकर विश्राम करने लगा। धीरे-धीरे वह नींद की गोद में चला गया।

उस समय एक बूढ़ी राक्षसी वहाँ आयी। उसके क़दमों की आहट से पृथ्वी फट-सी रही थी। वह गरजती हुई बोली "यह सरोवर भैरव जाति के राक्षसों का है। तुमने यहाँ आने का साहस कैसे किया? इस जल को पीनेवाले तुम कौन हो?"

भैरवशास्त्री घबराता हुआ खड़ा हो गया। उसने निश्चय कर लिया कि मौत अटल है। कांपते हुए उसने दीन-स्वर में कहा "राक्षसी माँ, मेरा नाम भैरवशास्त्री है। भैरव जाति के तुम लोगों की भूख मिटाने के लिए विधि ने मुझे यहाँ भेजा होगा। पूर्व जन्म में हम दोनों का एक ही गोत्र रहा होगा। तुम तो इस सत्य से परिचित ही होगी कि स्वगोत्र के लोगों का मांस खाना निषिद्ध है। पंडितों ने भी बारंबार अपने शास्त्रों में इस सत्य को दुहराया है।"

उसकी इन बातों को सुनकर बूढ़ी राक्षसी ज़ोर से हँस पड़ी और ज़ोरों से तालियाँ बजाने

लगी। दूसरे ही क्षण एक युवती राक्षसी झाड़ियों के पीछे से आगे आयी। उसने भैरव शास्त्री को ग़ौर से देखा। फिर उसने अपनी माँ से कहा "माँ, मैं पहले ही तुमसे कह चुकी। हम जब भैरव घाटियों में थे, तब भिल्ल जाति की स्त्री से हमने जंतुओं के मांस को पकाना ही सीखा। मनुष्य के मांस को पकाने की पद्धति मैं नहीं जानती।"

युवती राक्षसी की बातों को सुनते हुए भैरवशास्त्री को एक उपाय सूझा। उसने प्रशंसा-भरे नेत्रों से युवती राक्षसी को देखते हुए कहा "रूप-रंग की बात भूल जाओ। तुम्हारी बेटी की सुँदरता के सामने गंधर्व कन्याओं की सुँदरता भी कुछ है नहीं। अपना क्या नाम बताया? अभी शादी हुई नहीं होगी न?" इस आशा में उसने ये बातें कीं कि

शायद मौत टल जाए।

"नाम है चतुरसुंदरी। इसकी शादी की गड़बड़ी के कारण ही हम उन घाटियों को छोड़कर यहाँ चली आयीं। वहाँ के युवक राक्षस आपस में यह कहकर झगड़ते रहते थे कि चतुरसुंदरी मेरी है, मेरी होकर ही रहेगी। इस विषय को लेकर वे परस्पर लड़ते भी रहते थे। उनसे बचने के लिए हम यहाँ चुपचाप चली आयीं। नहीं तो हमें ड़र था कि भैरव घाटी की राक्षस जाति का शाश्वत रूप से अंत हो जायेगा।" बूढ़ी राक्षसी ने कहा।

भैरवशास्त्री ने हाथ जोड़कर आकाश को देखते हुए कहा "आहा, विधि की लीलाएँ कोई कैसे जाने?" कहकर एक क्षण भर के लिए उसने आँखें बंद कर लीं और फिर आँखें खोलते हुए कहने लगा "हमारी चतुरसुंदरी के लिए योग्य वर यहाँ से कोस भर की दूरी के घने जंगल में रहता है। तुमने 'हाँ' कह दिया तो मैं उससे भी 'हाँ' कहलवाऊँगा।"

उसकी बातों पर बेहद खुश होती हुई बूढ़ी राक्षसी ने कहा "अरे ऐ नर, तुम कितने अच्छे मनुष्य हो। तुमने यह शादी पक्की कर दी तो मैं तुम्हें अनगिनत हीरे-जवाहरात दूँगी।"

"तुम्हारे कारण मुझे केवल धन ही प्राप्त नहीं होगा बल्कि यह शादी कराने में सफल हो जाऊँगा तो पुण्य भी प्राप्त होगा" कहता हुआ भैरवशास्त्री वहाँ से निकल पडा। वैदेही राज्य की ओर जाते-जाते एक पेड़ के नीचे बैठ गया और गंभीरता से सोचने लगा।

थोड़ी देर सोचने-विचारने के बाद भैरवशास्त्री एक निर्णय पर पहुँचा। उसे लगा कि कोसल और वैदेही राज्यों के बीच संबंध को जोड़ने का बीड़ा मैंने जो उठाया, वह केवल मेरा भ्रम है, दुराशा है, यह असाध्य कार्य है। उसने सोचा, जिस तरह बूढ़ी राक्षसी

को अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों से अपने पक्ष में कर लिया, उसी तरह घने जंगल के राक्षस को भी अपना बना लूँ, अपनी बातों से उसे भी खुश कर दूँ, उसमें भी आशाएँ जगाकर विश्वास दिला दूँ तो पर्याप्त धन कमा सकता हूँ।

वह वहाँ से उठा और तेज़ी से घने जंगल में पहुँचा। वहाँ के राक्षस की गुफ़ा को जानने में उसे कोई कठिनाई नहीं हुई। उस स्थल पर जंतुओं के अस्थिपंजर ढ़ेर के ढ़ेर पड़े हुए थे। उनके बग़ल में ही बड़ी गुफ़ा थी।

भैरवशास्त्री ने अपने इष्टदेव का हृदयपूर्वक स्मरण किया और निर्भीक होकर गुफ़ा के सामने गया। राक्षस खर्राटें लेता हुआ गाढ़ी निद्रा में था। भैरवशास्त्री ने ऊँचे स्वर में चिल्लाया "राक्षस प्रभू, मैं भैरवशास्त्री हूँ। आपकी भलाई करने आया हूँ।"

राक्षस तुरंत उठ बैठा और कहा "मुझ जैसे बड़े राक्षस को नींद से जगाने का तुमने साहस किया। मैं तुम्हारे साहस की दाद देता हूँ। तुम्हारे इस साहस से खुश होकर तुम्हें रत्न, जवाहरात आदि देना चाहता हूँ, जो गुफ़ा के एक कोने में पडे हुए हैं। पर क्या लाभ। इस संपत्ति का उपयोग तुम कर नहीं पाओगे, क्योंकि तुम्हारे पास सिर्फ़ एक घंटे का समय है। एक घंटे के बाद तुम इस लोक में नहीं रहोगे, परलोक चले जाओगे।"

राक्षस की बातों से भैरवशास्त्री मन ही मन भयभीत तो अवश्य हुआ, पर उस भय को छिपाते हुए उसने कहा "राक्षस प्रभु की प्रशंसा का पात्र बना, यही मेरे लिए बहुत कुछ है। मैं आपका कृतज्ञ हूँ। राक्षस-संप्रदाय के अनुसार जो भला करता है, उसे हानि पहुंचाना पाप है, आत्म-द्रोह है, राक्षस-जाति पर कलंक है। आप अभी-अभी नींद से जागे, इसलिए यह संप्रदाय-सिद्ध सत्य

आपके ध्यान में आया नहीं होगा।''

उसकी बातों पर राक्षस ने हँसकर कहा ''भैरव, तुम्हारे वाक्-चातुर्य की कितनी भी प्रशंसा करूँ, कम है। अपनी जान पर खेलकर इतनी दूर चले आये। बोलो, किस काम पर यहाँ आना हुआ?''

''आपके लिए एक वधु को चुनकर आया हूँ।'' भैरव ने मुस्कुराते हुए कहा।

''विवाह! वधु! सच बोल रहे हो या मज़ाक कर रहे हो? मैंने तो सोचा कि इस घंटाकंठ के जीवन में यह भाग्य बदा नहीं है।'' आश्चर्य प्रकट करते हुए राक्षस ने कहा।

''हे घंटाकंठ प्रभू, जन्म-पत्रियाँ भी समय-संदर्भ के प्रभाव के कारण परिवर्तित होती रहती हैं। मैं जिस काम पर आपके पास आया, वह यों है।'' फिर उसने उस बूढ़ी राक्षसी व उसकी पुत्री चतुरसुँदरी संबंधी विवरण दिया।

यह सुनकर राक्षस खुशी से फूल गया। उसने कहा ''ओहो, अभी चलो। मेरे कंधों पर चढ़ जाओ। उस जंगल में जल्दी पहुँच जाएँ।'' यों कहकर वह भैरवशास्त्री को ले जाने उतावला होने लगा।

भैरवशास्त्री ने अपने दुपट्टे में गुफ़ा के पास पडे हुए कुछ रत्न डाल लिये और कसकर बाँध लिया। वह राक्षस के कंधे पर बैठ गया। अंधेरा छाते-छाते वे दोनों उस छोटे जंगल में पहुँचे और उस स्थल पर गये, जहाँ युवती राक्षसी रहती थीं।

युवक राक्षस घंटाकंठ को आते हुए देखकर युवती राक्षसी चतुरसुँदरी ने अपनी बूढ़ी माँ से कहा ''अच्छा हुआ, दुल्हा अंधेरा छा जाने के पहले ही आ गया। नहीं तो उसके रूप-रंग को देखना संभव नहीं हो पाता।''

इतने में राक्षस और भैरवशास्त्री दोनों वहाँ आये। चतुरसुँदरी को देखते ही राक्षस ने कहा ''वाह, सुँदरता का जीता-जागता नमूना है यह। लगती है, राक्षस-रूप में मोहिनी है। मैं यह शादी करने तैयार हूँ।''

बूढी राक्षसी ने बेटी से पूछा ''कहो, तुम्हारी क्या राय है?'' ''पति की इच्छा ही, पत्नी की भी इच्छा है।'' कहती हुई चतुरसुँदरी दो पग पीछे गयी। बूढ़ी राक्षसी, पुत्री के हाथ पकड़कर युवक राक्षस के पास ले आयी और उसके हाथ घंटाकंठ के हाथों में रख दिये।

''पाणिग्रहण हो गया। समझ लीजिये, विवाह संपन्न हो ही गया।'' कहकर ताली

बजाते हुए भैरवशास्त्री ने बूढ़ी राक्षसी से कहा "माँ राक्षसी, मेरे पुरस्कार की बात कहीं भूल तो नहीं गयीं?"

"भला कैसे भूलूँगी" कहती हुई बूढ़ी राक्षसी ने हीरे, रत्न, जवाहरातों की एक गठरी उसे दी।

राक्षस की रत्नों की गठरी भैरवशास्त्री ने एक भुजा में लटका ली और दूसरी भुजा में बूढ़ी राक्षसी की दी हुई गठरी लटका ली। उसने हाथ जोड़कर उन दोनों को नमस्कार किया और सिर उठाकर आकाश को देखते हुए राक्षस से कहा "राक्षस प्रभू, आप अभी अकेले नहीं हैं। गृहस्थ हैं। मैं जानता हूँ कि यह रहस्य बताकर मैं राजद्रोह कर रहा हूँ। पर आपको बताना मेरा धर्म है। हमारे राज्य में स्थित घने जंगल में आप जंतुओं को ही नहीं, मानवों को भी विश्रृंखल होकर मार रहे हैं और खा रहे हैं। यह बात हमारे राजा को मालूम हो गयी। वे आपको मार डालने के लिए बड़ी सेना को लेकर आ रहे हैं। अगर आप तीनों इसी रात को भैरव घाटी न सही, शार्दूल घाटी चले जाइये और अपने को बचा लीजिये।"

घंटाकंठ ने ज़ोर से हुंकार भरते हुए, ज़मीन को अपने पैरों से रौंदते हुए कहा "मानवों से डरकर मैं अपनी गुफ़ा छोड़ दूँ और भाग जाऊँ?"

तब भैरवशास्त्री ने सविनय कहा "राक्षस प्रभू, आप भाग नहीं रहे हैं। आपका छोटा परिवार अब बड़ा हो गया। उसके मुताबिक आपको फैली हुई जगह भी तो चाहिये न? वह गुफ़ा आपके पारिवारिक जीवन के लिए काफी नहीं होगी। आप कहीं बहुत दूर भी नहीं जा रहे हैं। बस, कोसल की सरहदों को पार करके थोड़ी दूर और जाकर बसनेवाले हैं।" यों कहकर उसने बूढ़ी राक्षसी की ओर देखा।

बूढ़ी राक्षसी ने कहा "भैरव की सलाह सही है। चलिये यहाँ से।" वे तीनों वहाँ से निकल पड़े। बेटी और दामाद बूढ़ी राक्षसी के पीछे-पीछे गये। अपनी भुजाओं पर लटकती हुई गठरियों के वज़न के कारण हाँफते हुए भैरवशास्त्री अपने आप कहने लगा, "दारिद्र्य ही भार नहीं है, कभी-कभी धन-भार भी मनुष्य को थका देता है।" यों कहकर मुस्कुराता हुआ अपने नगर की ओर चला।

उत्तम काव्य

हेलापुरी में कवियों का आदर बड़े स्तर पर होता था। प्रसिद्ध कवियों की तरह स्वयं कविताएँ रचकर, पढ़ने की बड़ी तमन्ना थी, हेलापुरी के बहुत-से लोगों को। अपनी कविताएँ सुनाकर महाराज से पुरस्कार पाने की उनकी तीव्र इच्छा थी।

आस्थान कवि कुलशेखर के पास वे आते रहते थे और महाराज के दर्शन की अपनी अभिलाषा व्यक्त करते रहते थे।

हेलापुरी से दो मीलों की दूरी पर सुगंधिपुर था। वहाँ कुछ प्रमुख कवि थे। साथ ही कुछ ऐसे भी व्यक्ति थे, जिनमें कविता रचने की शक्ति शून्य ही कही जा सकती थी। कुमारभट्ट उनमें से एक था। स्वरचित दो काव्यों को लेकर वह कुलशेखर से मिला।

कुमारभट्ट की इच्छा थी कि इन दोनों काव्यों में से जो श्रेष्ठ है, वह महाराज को समर्पित किया जाए। कुलशेखर ने उसकी इच्छा मान ली। अब कुमारभट्ट की खुशी का ठिकाना न रहा। उसने अपना पहला काव्य पढ़कर सुनाया कवि कुलशेखर को।

दो घंटों तक बड़ी ही सहनशक्ति के साथ कुलशेखर ने काव्य-पठन सुना। जब पहला काव्य सुनाने के बाद कुमारभट्ट दूसरा काव्य सुनाने जा रहा था, तब उसने उसे ऐसा करने से रोका और कहा ''कविराज, अपना दूसरा काव्य सुनाने की कोई आवश्यकता नहीं। आपके दोनों काव्यों में से यही उत्तम से उत्तम काव्य होगा।''

अब कुमारभट्ट जान गया कि उसकी काव्य-प्रतिभा क्या है और कितनी है। उसने कुलशेखर को प्रणाम किया और वहाँ से चलता बना।

- कमलनाथ

सम्राट अशोक

११

(पाटलीपुत्र के महाराज बिंदुसार का स्वास्थ्य अति चिंताजनक स्थिति में था। तक्षशिला से सुशेम को तथा उज्जयिनी से अशोक को यथाशीघ्र पाटलीपुत्र पहुँचने के लिए प्रधान मंत्री ने दूतों द्वारा संदेश भिजवाया। सुशेम की यात्रा में रुकावट डालने के लिए अशोक के मित्र यश ने दो नर्तकियों को तक्षशिला भेजा। यश उज्जयिनी लौट आया। ज्योतिषी बनकर आये सुशेम के मित्र के षड्यंत्र का भांडा फोड़ दिया और अशोक की उपस्थिति में उसे क़ैद करवाया। पाटलीपुत्र से जैसे ही संदेश मिला, यश ने अशोक को सेना सहित पाटलीपुत्र जाने के लिए मनाया।)- बाद

पाटलीपुत्र जाने के पहले अशोक ने तत्संबंधी विषय बताने के उद्देश्य से अपने दलनायकों को बुलवाया। राजभवन के सामने इकत्रित दलनायकों को संबोधित करते हुए यश ने यों कहा ''मित्रो, बहुत ही जागरूकता के साथ व्यवहार करने का समय आ गया। हमें सतर्क रहकर अपने लक्ष्यों की पूर्ति करनी है। चंद्रगुप्त मौर्य ने इस सुविशाल साम्राज्य की स्थापना की। क्या अपनी ही आँखों के सामने उसे विच्छिन्न होते हुए देखें? हाथ पर हाथ धरे चुप बैठे रहें? अथवा उसकी रक्षा के लिए कटिबद्ध हो जाएँ। अभी यहीं हमें इसका निर्णय करना चाहिए।''

''साम्राज्य की रक्षा के लिए हम लोग यथाशक्ति लड़ेंगे। इसमें हम किसी भी प्रकार की लिाई आने नहीं देंगे। हमारे युवराज के प्रति, उनके निकट मित्र आपके प्रति हमें अटल विश्वास है। बताइये कि अब मगध

साम्राज्य किस विपत्ति से घिरा हुआ है। उसके शत्रु कौन हैं?" दलनायकों के अधिपति अवंती के सर्वसेनाध्यक्ष ने पूछा।

"मित्रो, आपने राज्य के बाहर के शत्रुओं से कितनी ही बार लड़ाइयाँ की होंगीं। किन्तु अब हमें बाहर के शत्रुओं से लड़ना नहीं है। राज्य में फैले तथा राजपरिवार के अंदर ही मौक़े की ताक़ में बैठे शत्रुओं से हमें लड़ना है। इन स्वार्थपूर्ण शक्तियों से हमें जूझना है। ये लोग बाह्य शत्रुओं से भी अधिक ख़तरनाक हैं। बाह्य शत्रुओं से जूझने के लिए धैर्य मात्र पर्याप्त है। किन्तु अंदर के शत्रुओं का नाश करने के लिए धैर्य के साथ-साथ अटूट विश्वास और चित्त-शुद्धि की नितांत आवश्यकता है।" यश ने कहा। "आप हमारे नेता हैं। जिस विश्वास की आप बात कर रहे हैं, उसे हममें भरिये" एक दलनायक ने कहा।

"यह किसी के भरने से नहीं भरता। स्वयं निर्धारित लक्ष्यों पर यह निर्भर होता है। लक्ष्य उन्नत और उत्तम हों तो हृदय में अटल विश्वास आप ही आप उत्पन्न होता है। हमें स्वयं इसकी आदत डालनी चाहिये। हमारे सम्राट का स्वास्थ्य बहुत ही क्षीण हो गया। किसी भी क्षण वे मर सकते हैं। सम्राट की मृत्यु के बाद कौन इस सिंहासन पर आसीन होने के योग्य है? इस संबंध में आपकी क्या राय है?" यश ने पूछा।

थोड़ी देर मौन रहने के बाद सेनाध्यक्ष ने कहा "मैंने सुना कि महाराज युवराज सुशेम का राज्याभिषेक करने का निर्णय ले चुके हैं। किन्तु मैं चाहता हूँ कि यह राज्याभिषेक न हो तो अच्छा है।"

"आप क्यों ऐसा चाहते हैं?" यश ने पूछा।

"युवराज सुशेम दुष्ट ही नहीं बल्कि मूर्ख भी हैं। एक बार उनके कहे अनुसार मैंने एक फुर्तीले सैनिक को उनके यहाँ भेजा। वह अंगरक्षक के पद पर नियुक्त हुआ। जब मैं पास ही खड़ा था तब उड़ते हुए कौवे ने उनकी पगडी पर पेशाब किया। इसपर सुशेम अनावश्यक ही अंगरक्षक पर नाराज़ हो गये और उसे मौत की सज़ा दी। ऐसे उद्दंड स्वभाव का व्यक्ति महाराज बने तो प्रजा पर क्या गुज़रेगी, यह मुझे बताने की ज़रूरत नहीं।" सेनाध्यक्ष ने दुखी होते हुए कहा।

"ऐसी स्थिति में हमें अपने प्रयत्न जारी रखने चाहिये, जिससे ऐसा अयोग्य मनुष्य

राज्याधिकार हस्तगत न कर पाये। एक और बात आपसे पूछना चाहूँगा। क्या मगध सिंहासन पर आसीन होने की योग्यता अशोक में है?'' यश ने पूछा।

''सब प्रकार से युवराज अशोक योग्य हैं। इसमें कोई संदेह नहीं। अशोक ही मगध के सम्राट बनें'' सेनाध्यक्ष ने ज़ोर देकर कहा।

अशोक ने तभी वहाँ प्रवेश किया।

''मगध साम्राज्य के होनेवाले सम्राट युवराज अशोक को सविनय प्रणाम'' सेनाध्यक्ष तथा दलनायक चिल्ला पड़े और सिर झुकाकर नमस्कार किया।

''अब एक और क्षण भी विलंब करना नहीं चाहिये। यहाँ कौन-कौन दलनायक रहेंगे, इसका निर्णय सेनाध्यक्ष ही करेंगे। ज़रूरत पड़ने पर उन्हें लड़ना होगा और राजभवन की रक्षा करनी होगी। शेष सभी प्रातःकाल ही राजभवन के सामने हाज़िर हो जाएँ। सूर्योदय के पूर्व ही हमें युवराज के साथ निकलना होगा'' यश ने कहा।

सभी दलनायकों ने अपनी स्वीकृति देते हुए हाथ उठाया। ''मित्रो, हमारे पितामह से सुस्थापित मगध साम्राज्य के संरक्षण के लिए आप सभी लोग जो सहयोग दे रहे हैं, उसके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूँ; मैं यह कभी नहीं भूलूँगा'' अशोक ने कहा।

★ ★ ★

''प्रभू, महाराज की मृत्यु हो गयी'' कहता हुआ एक दूत अंदर आया। युवराज सुशेम उस समय एक कमरे में बैठा हुआ मदिरा पी रहा था। वहाँ दो विदेशी व्यापारी भी थे। इस समाचार को सुनते ही उसका

ध्यान बंट गया और उसने सिर ऊपर उठाकर देखा। उनके सामने एक मणि रखा हुआ था और उसकी अद्भुत कांति कमरे को प्रकाशमान कर रही थी।

''क्या तुम्हारा ख्याल है कि इस समाचार को सुनाने के एवज़ में तुम्हें यह मणि दूँगा? कभी नहीं। तुम्हें यहाँ किसने आने दिया?'' सुशेम ने नाराज़ हो दूत से पूछा। उसे लगा कि दूत ने अंदर प्रवेश करके रंग में भंग कर दिया।

''आप ही ने अनुमति दी प्रभू। मैंने जैसे ही कहा कि प्रधानमंत्री के यहाँ से दूत आया हुआ है, तो आपने उसे तुरंत प्रवेश करने के लिए कहा।'' वहीं खड़े सुशेम के अंतरंग सलाहकार सुबाहू ने कहा।

''ऐसी बात है क्या?'' कहते हुए सुशेम

ने पूछा "क्या पिता मर गये?"

"हाँ प्रभू, हमें भी अभी-अभी प्रधान मंत्री से यह समाचार मिला" सुबाहू ने कहा।

"विदेशी व्यापारियों को संबोधित करते हुए सुशेम ने कहा "ठीक हैं, बाद मिलेंगे।"

दोनों व्यापारियों की दृष्टि अब मेज़ पर रखे गये मणि पर पडी। तक्षशिला में व्यापार करने की अनुमति पाने के उद्देश्य से उन्होंने यह मणि उसे भेंट में दिया। किन्तु इस अनुमति-पत्र से संबंधित कोई कार्रवाई नहीं हुई। वे इस दुविधा में पड़ गये कि मणि वापस ले जाएँ या वहीं रखकर चले जाएँ।

सुशेम ने मणि को अपने हाथ में लिया और व्यापारियों से कहा "कुछ और मूल्यवान मणियों को लेकर पाटलीपुत्र आइये। तक्षशिला में ही नहीं, संपूर्ण मगध साम्राज्य में व्यापार चलाने की अनुमति दूँगा।" कहकर वह ठठाकर हँसने लगा।

व्यापारी चले गये।

"मुझे तुरंत पाटलीपुत्र जाना है। सुबाहू, हमारे दलनायकों को बुलाओ। सोच रहा हूँ कि क्या कुछ अंगरक्षकों के साथ जाना काफ़ी है या अपने साथ थोड़ी सेना भी ले जाऊँ?" सुशेम ने कहा।

"सेना को लेकर जाना ही अच्छा है" पीछे से किसी की आवाज़ आयी।

सुशेम ने घूमकर देखा। देखा कि ये बातें करनेवाला उसका प्रधान गुप्तचर है, जो पाटलीपुत्र में रहता है।

"क्या हुआ? कैसी बातें कर रहे हो। क्यों इस तरह हाँफ रहे हो?" सुशेम ने पूछा।

"प्रभू, मैं अभी-अभी पाटलीपुत्र से आ रहा हूँ। मैं जो विषय कहनेवाला हूँ, वह बहुत ही गंभीर विषय है। युवराज अशोक पाटलीपुत्र पहुँचने ही वाले हैं।" प्रधान गुप्तचर ने कहा।

"बको मत। तुम जिस युवराज अशोक की बात कर रहे हो, वह न हिल-डुल सकनेवाले मांस-पिंड की तरह निर्जीव पड़ा हुआ है। वह खड़े होने की स्थिति में भी नहीं है। उज्जयिनी में वह मृत्यु की प्रतीक्षा में क्षण गिन रहा है।" सुशेम ने व्यंग्य-भरे स्वर में कहा।

"प्रभू, सेना सहित घोड़े पर चढ़कर आते हुए उन्हें मैंने अपनी इन आँखों देखा है।" गुप्तचर ने कहा।

सुशेम को उसकी बातों पर विश्वास नहीं हुआ, इसलिए पूछा "सचमुच।"

“मेरी बातों में एक अक्षर भी झूठ साबित हो तो मुझे मौत के घाट उतारिये। आपको अभी सेना के साथ पाटलीपुत्र निकल जाना चाहिये। नहीं तो मुझे दंड देने का हक़ भी आप खो बैठेंगे।” गुप्तचर ने कहा।

“तो फिर” कहकर उसने सुबाहू की ओर संदेह-भरी दृष्टि से देखा। सुबाहू एक क़दम आगे आकर बोला “कहिये प्रभू।”

“उज्जयिनी से आयी हुई वे नर्तकियाँ कहाँ हैं? उनके नाम भी भूल गया” सुशेम ने नाराज़ होकर पूछा।

“उन्हीं नर्तकियों की बात कर रहे हैं न आप, जो कल आपसे मिलने आयीं थीं” सुबाहू ने पूछा।

“हाँ, हाँ”, उन्होंने ही कहा था कि मूर्ख अशोक को पंगु बना दिया, पक्षाघात का शिकार बना दिया।” सुशेम ने कहा।

“न ही अशोक मूर्ख हैं और न ही वह पक्षाघात से पीडित हैं।” गुप्तचर ने कहा।

“मेरी ही बात का खंडन कर रहे हो? इतनी जुर्रत? वह मूर्ख नहीं तो और क्या है?” सुशेम चिल्ला पडा।

“शांत हो जाइये प्रभू। आप मेरा विश्वास नहीं करेंगे तो मैं कुछ कर नहीं सकूँगा। आपने मुझे जो जिम्मेदारी सौंपी, उसे ईमानदारी से निभाता आ रहा हूँ। मेरी ईमानदारी पर शंका मत कीजिये। मुझे जाने की अनुमति दीजिये” गुप्तचर ने दुख-भरे स्वर में कहा। ‘नहीं’ कहकर सुशेम चिल्ला उठा। फिर कहा “उन नर्तकियों को तुम्हारे ही समक्ष खड़ा करूँगा। सुबाहू, उन्हें तुरंत यहाँ ले आना।”

“अब वे कहाँ हैं युवराज?” सुबाहू ने पूछा।

“यह मैं क्या जानूं। भेंटें लीं और चली गयीं। वे इसी नगर में कहीं होंगीं। क्या हमारे सैनिक उन्हें ले आ नहीं सकते?” सुशेम ने पूछा।

इतने में एक सैनिक वहाँ आया। वह उज्जयिनी में रहनेवाला सुशेम का गुप्तचर था। सुशेम ने उसे देखते ही आतुरता-भरे स्वर में कहा “सही समय पर आये। कहीं यह बताने के लिए तो नहीं आये कि अशोक पाटलीपुत्र सेना-सहित निकल गया।”

“तो प्रभु को यह समाचार पहले ही मालूम हो चुका। अशोक जैसे ही पाटलीपुत्र निकले, वैसे ही मैं तक्षशिला निकल पडा।” गुप्तचर ने हड़बड़ाते हुए कहा।

"इन नर्तकियों की ऐसी की तैसी। क्या अशोक पक्षाघात का शिकार नहीं हुआ?" सुशेम ने आवेश-भरे स्वर में पूछा।

"पक्षाघात! वे तो पहले से भी अधिक स्वस्थ हैं। बड़े ही उत्साह के साथ घोड़े पर चढ़कर निकले" गुप्तचर ने कहा।

"बस करो। चुप हो जाओ। उन दग़ाबाज़ नर्तकियों को पकड़कर ले आओ। उनके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दो। आग में डालकर उन्हें जला दो। उनका गला घोंट दो।" वह पागल की तरह चिल्लाने लगा।

* * *

सूरज पश्चिम के पहाड़ों पर पहुँच रहा है। राजा बिंदुसार के भौतिक देह को दहन के लिए नदी तट पर ले आये। उसके छहों पुत्र भी वहीं हैं। अभी निश्चय नहीं हुआ कि राजा की चिता में कौन आग लगाये।

"क्या छहों पुत्रों को यह काम सौंपा जा सकता है?" सेनाध्यक्ष ने प्रधानमंत्री से पूछा।

प्रधान मंत्री ने राजपुरोहित को देखते हुए पूछा "चिता में आग लगाने की शुभ घड़ियाँ आसन्न हो गयीं ?"

"एक और घंटे का समय है।" राजपुरोहित ने कहा। "समाचार मिला है कि अशोक किसी भी क्षण नगर में प्रवेश करेंगे। सुशेम के बाद अशोक ही हक़दार युवराज हैं, ऐसा मेरा विचार है" प्रधान मंत्री ने कहा। पुरोहित ने कहा "हाँ, यही धर्म-सम्मत है।" दूर खड़ी प्रजा चिल्ला उठी "देखो, युवराज अशोक आ गये।"

वहीं खड़े छहों राजकुमार चकित रह गये। थोड़ी देर बाद वहाँ शोरगुल होने लगा, हाहाकार मच गया।

प्रधानमंत्री ने पूछा "क्या हो रहा है?"

"राजकुमारों के हुक़्म के मुताबिक कुछ सैनिक अशोक को यहाँ आने से रोक रहे हैं। युवराज और सेना पर वे पथ्थर फेंक रहे हैं।" दौड़े-दौड़े आये एक सैनिक ने बताया।

"हे भगवान, इस समय पर राजकुमारों के बीच ये झगड़े।" कहकर पुरोहित ने अपना दुख प्रकट किया।

सेनाधिपति पास ही के एक टीले पर खड़ा हो गया और आज्ञा देने लगा "हमारा कोई भी सैनिक अशोक को न रोके। जो इस आज्ञा का उल्लंघन करेगा, उसे फाँसी की सज़ा होगी।"

राजकुमारों ने पहले ही चंद दलनायकों
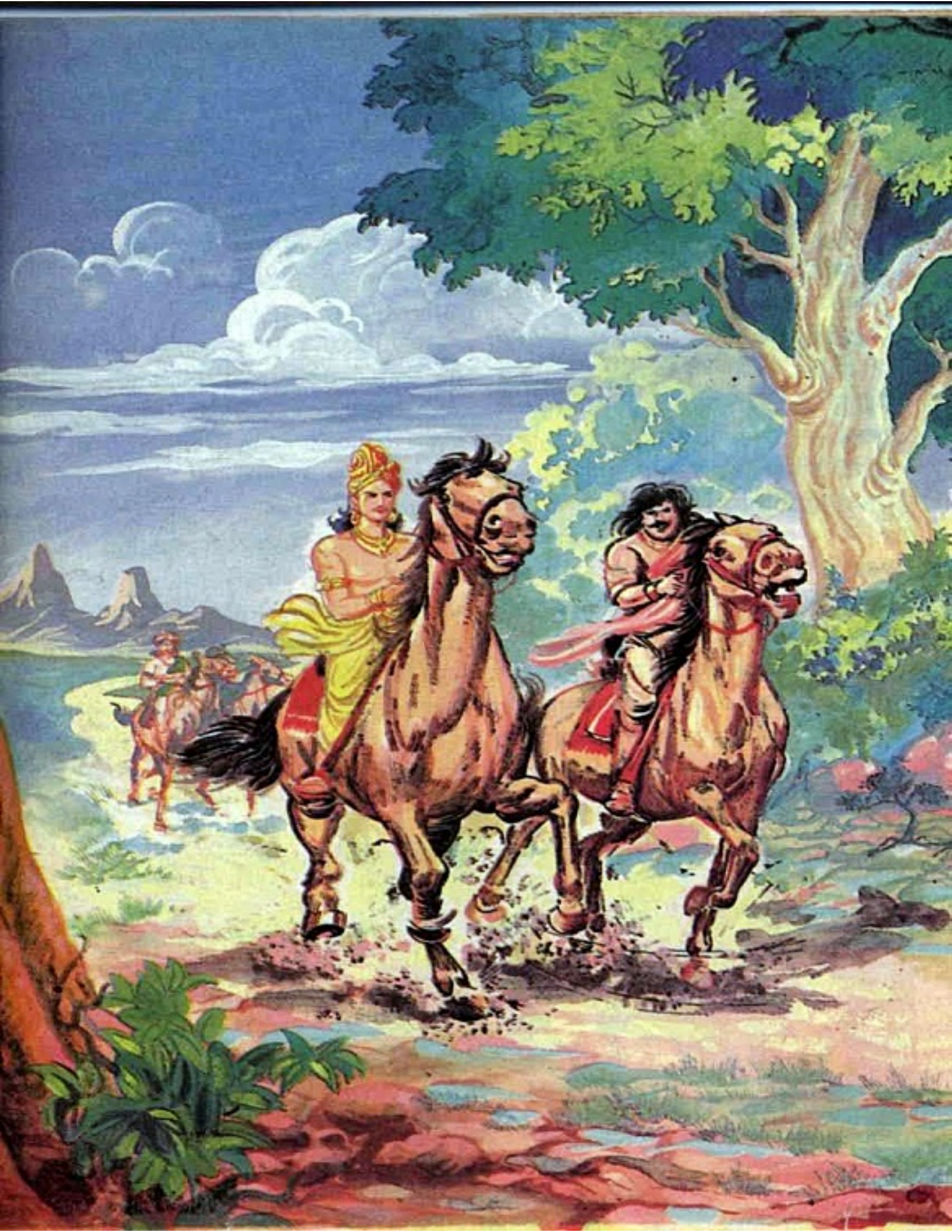
को बख्शीशें दीं, इसलिए कुछ सैनिकों ने अशोक को रोकने की चेष्टा की। उन्हें मालूम नहीं था कि अशोक के पीछे बलशाली सेना है। यश ने आज्ञा दी कि जो भी अशोक को रोकने की कोशिश करेगा, उसे मार डाल दिया जाए।

सेनाधिपति चिल्लाता रहा कि हमारे सैनिक अशोक की रक्षा में तत्पर हों।

"छहों राजकुमार सुशेम के आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। मुझे मालूम है कि वे अशोक से ईर्ष्या करते हैं। किन्तु ऐसे अवसर पर इतना पाप करने पर वे तुल जाएँगे, इसकी मैंने कल्पना नहीं की।" प्रधानमंत्री ने कहा।

"दहन-संस्कार का समय आसन्न हो गया। समझ में नहीं आता कि अब क्या किया जाए?" पुरोहित अपने आप बड़बड़ा रहा था।

इतने में अशोक वहाँ आया।

"युवराज का स्वागत। ऐसे समय पर आपको ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ रहा है, इसका मुझे खेद है। अच्छा हुआ, आप सकुशल यहाँ पहुँच गये। यही काफ़ी है।" प्रधानमंत्री ने कहा।

"अपने पिता की चिता में आग लगाइये" राजपुरोहित ने अशोक से कहा। कुछ ही क्षणों में वह कार्यक्रम पूरा हो गया।

"सिंहासन का खाली रहना उचित नहीं है। महाराज की चिता में जो आग लगाते हैं, वे ही सिंहासन के उत्तराधिकारी होते हैं। इसी रात को आपका मुकुटाभिषेक संपन्न होना चाहिये। आवश्यक इंतज़ाम कर दिये गये।" प्रधानमंत्री भल्लाटक ने कहा।

"मैं शासन-भार संभालूँगा। मुकुटाभि-षेक-उत्सव अभी न हो। मुझे पहले यह जानना होगा कि उच्च राजकर्मचारी, प्रमुखगण तथा सामंत इसके पक्ष में हैं या नहीं।" अशोक ने गंभीरतापूर्वक कहा।

"आपकी बातें आपकी उन्नत मनोप्रवृत्ति के साक्षी हैं" प्रधान मंत्री ने कहा।

थोड़ी ही देर में मालूम हुआ कि अशोक को मारने के लिए आये हुए सबके सब मारे गये। मरे हुए लोगों में से छहों राजकुमार भी थे। राजभवन में शोक छा गया। परिचारिकाएँ दीन स्वर में विलाप करने लगीं।

- सशेष

गुरु दक्षिणा

धुन का पक्का विक्रमार्क पुनः पेड के पास आया। पेड़ से शव को उतारा और कंधे पर डाल लिया। यथावत् मौन हो श्मशान की ओर बढ़ने लगा। तब शव के अंदर के बेताल ने कहा "पता नहीं, तुम मेरी बातें मानने से इनकार क्यों कर रहे हो। तुम तो भली-भांति जानते हो कि इसमें मेरा कोई स्वार्थ नहीं। मैं तो केवल तुम्हारी भलाई के लिए ही कह रहा हूँ। जान-बूझकर अपनी जान जोखिम में क्यों डालते हो? तुम तो खुद देख रहे हो कि यहाँ विष सर्प हैं, भूत-प्रेत हैं, भयंकर जंतु हैं, जो किसी भी क्षण तुम्हारी मौत का कारण बन सकते हैं। तुम्हारी निर्भीकता, तुम्हारा आग्रह मुझे आश्चर्य में डुबो रहे हैं। शायद कोई मित्र, कोई साथी राजा अथवा कोई गुरु जिससे तुमने शिक्षा प्राप्त की, तुम्हारे द्वारा अपना कार्य साधना चाहता हो। अपने प्राण समान मित्र के लिए

बैताल कथा

अथवा साथी राजा के लिए तुमने यह कार्य-भार संभाला तो तुम्हें मैं दोषी नहीं ठहरा सकता। किन्तु शिक्षा प्रदान करनेवाले अपने गुरु के लिए तुमने यह बीडा उठाया है तो तुम्हें उचित-अनुचित का ध्यान रखना होगा और मेरी दृष्टि में वही विवेकपूर्ण कार्य होगा। विद्या-बोध करनेवाले गुरु को हर शिष्य शिक्षा की समाप्ति के बाद गुरु दक्षिणा समर्पित करता है। इस समर्पण के उपरांत गुरु का शिष्य से और पाने की अभिलाषा रखना वांछनीय नहीं है। गुरु को दक्षिणा प्रदान करने के लिए शिष्य को श्रम करना भी उचित नहीं है। कुछ गुरु ईर्ष्यालू होते हैं। उनकी मांगें अनुचित होती हैं। उन मांगों के पीछे उनकी बुरी नीयत होती है। उदाहरणार्थ उपासक नामक गुरु की कहानी तुम्हें सुनाऊँगा। थकावट दूर करते हुए उसकी कहानी सुनो, जो तुम्हारे लिए उपयोगी साबित होगी।'' फिर वह गुरु उपासक की कहानी सुनाने लगा।

बहुत पहले की बात है। बदरिका वन में एक सुप्रसिद्ध गुरुकुल था। उपासक वहाँ का गुरु था। जो भी उसके पास आता था, उसे शिष्य के रूप में स्वीकार करता था। उन-उनकी अभिरुचियों के अनुसार विद्या-बोध करता था।

उपासक के यहाँ विद्या-प्राप्ति की अवधि की कोई सीमा नहीं होती थी। शिष्य जब तक चाहें, विद्यार्जन कर सकते थे और जब चाहें गुरु की अनुमति पाकर जा सकते थे। कुछ शिष्य एक वर्ष मात्र शिक्षा प्राप्त करते थे और चले जाते थे। कुछ शिष्य तो वर्षों तक विद्याभ्यास करते रहते थे।

''शिक्षा का आरंभ होता है, अंत नहीं। गुरू होने के नाते मुझे जितना और जो मालूम है, अपने शिष्यों को पढ़ाता रहता हूँ। उन्हें पढ़ाते-पढ़ाते मैं भी नयी-नयी बातें सीखता रहता हूँ; मैं अपने ज्ञान की वृद्धि करता रहता हूँ; विद्याभ्यास ही मेरा जीवन-लक्ष्य है, इसीलिए मैं यह गुरुकुल चला रहा हूँ। अपने जीवन-लक्ष्य को दृष्टि में रखकर जो, जहाँ, जितना ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, कर लें। यह निर्णय आपके हाथ में है'' उपासक शिष्यों से कहा करता था।

गुरुकुल में जब तक शिष्य रहेंगे तब तक उन्हें शारीरिक परिश्रम करना होगा, यह शिक्षा का अनिवार्य अंग है। गुरुकुल के लिए आवश्यक तरकारियाँ, फल-पुष्प आदि का प्रबंध शिष्यों को ही करना होगा। यह उन्हीं की जिम्मेदारी है।

रहने की जगह तथा शेष सारी आवश्यकताओं व सुविधाओं का प्रबंध शिष्यों को ही करना होगा। उपासक कहा करता था कि शिष्यों का परिश्रम ही उसकी गुरु दक्षिणा है।

रंजन और भंजन नामक दो शिष्यों ने गुरु के यहाँ विद्या पाने गुरुकुल में प्रवेश पाया। उन दोनों ने कहा "गुरुवर, हम विशेषतया वैद्य विद्या पाने आपके यहाँ आये हैं। हमारी चाह है कि जितनी जल्दी हो सके, विद्याभ्यास पूरा करें और लौट चलें। अन्य शिष्यों की तरह शारीरिक परिश्रम करने के लिए हम पर दबाव न डालियेगा। आपका सहयोग हो, तभी यह संभव है। हम नित्य विद्याभ्यास में मग्न रहना चाहते हैं, यही हमारी अभिलाषा और प्रार्थना है।"

उपासक ने उनकी विनती मान ली। इससे अन्य शिष्य भड़क उठे। वे उपासक के पास गये और कहा "सब शिष्यों के लिए एक ही प्रकार के नियम होने चाहिए। सबके साथ एक ही प्रकार का न्याय होना चाहिए। आप जो भेदभाव दिखा रहे हैं, वह क्या उचित है, न्याय-संगत है?"

उपासक ने उनकी मांग पर मुस्कुराते हुए कहा "रंजन और भंजन ने पहले से ही श्रम किया और ज़िन्दगी गुज़ारी। उनमें अब शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा जगी। आप तो शारीरिक परिश्रम से अनभिज्ञ हैं, इसलिए श्रम आपकी विद्या का एक अनिवार्य अंग है। रंजन और भंजन को इस परिश्रम से छूट दी गयी है।"

शिष्यों ने अपनी दलील पेश करते हुए कहा "प्रारंभ में आपने कहा कि शारीरिक श्रम ही मेरी गुरु दक्षिणा है। अब आप कह रहे हैं कि वह विद्याभ्यास का एक अंग है। आपकी ये बातें हमारी समझ के बाहर हैं। क्या आप रंजन और भंजन से गुरु दक्षिणा स्वीकार नहीं करेंगे ?"
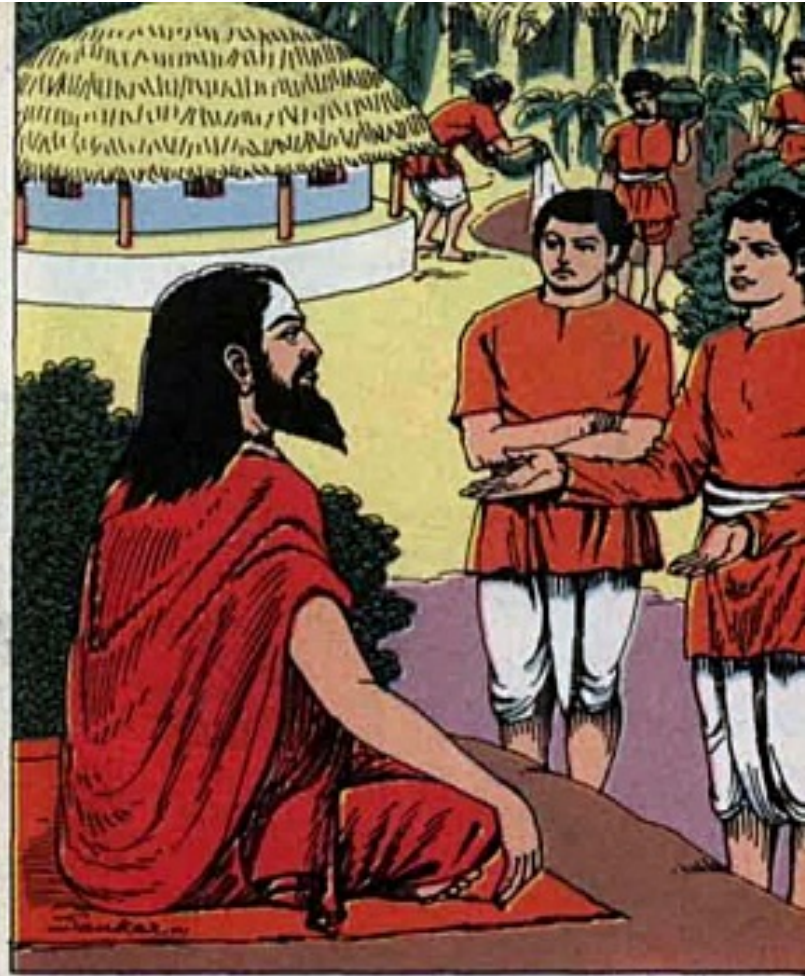
"हर एक से गुरु दक्षिणा लूँगा। जो शारीरिक श्रम नहीं करते, उनसे जो गुरु दक्षिणा लूँगा, वह साधारण नहीं होगी। वह साधारण शिष्य दे भी नहीं पायेंगे। विद्याभ्यास की पूर्ति के बाद शारीरिक श्रम न करने पर रंजन और भंजन को भी अवश्य ही दुख होगा। उन्हें इसका पछतावा होगा" गुरु ने कहा।

शिष्य जानते थे कि गुरु जो भी सोचते हैं, उसकी गहराई में जाते हैं और निर्णय लेते हैं। उनके इस उत्तर से वे तृप्त हुए और निश्चिंत चले गये। तीन साल गुज़र गये। एक दिन रंजन और भंजन गुरु से मिले और कहा

"गुरुवर, अब तक हमने जो सीखा, जीविका चलाने मात्र के लिए पर्याप्त है। इसी से हम तृप्त हैं। हमें जाने की अनुमति दीजिये।"

"क्या मुझे गुरु दक्षिणा दिये बिना ही चले जाओगे?" उपासक ने पूछा।

दोनों शिष्य घबरा गये। उन्होंने कहा "कहिये, आप क्या चाहते हैं?"

"अन्य शिष्यों की तरह आप भी शारीरिक श्रम करते तो वही मेरे लिए गुरु दक्षिणा हो जाती। परंतु तुम दोनों ने इस दिशा में कुछ नहीं किया। तुमने मेरे पास तीन सालों तक शिक्षा पायी और वह शिक्षा कोई साधारण शिक्षा नहीं। तुम अपने-अपने यहाँ जाओ और वैद्य-वृत्ति का प्रारंभ करो। ठीक एक वर्ष बाद मैं तुम्हारे पास आऊँगा। एक-एक को लाख अशर्फ़ियाँ देनी होंगीं। वही मेरी गुरु दक्षिणा होगी" उपासक ने कहा।

"एक ही वर्ष में लाख अशर्फ़ियाँ! वह क्या हमसे संभव हो पायेगा?" "शिष्यों, इस देश का राजा प्लवंग किसी विचित्र रोग से पीडित है। उस रोग की चिकित्सा के लिए आज तक किसी ने कोई दवा ढूँढ नहीं निकाली। इस आश्रम में रहकर इसी समस्या के परिष्कार का मार्ग मैं भी ढूँढ़ता आ रहा हूँ। प्लवंग के रोग की जो चिकित्सा करेगा, उसे लाख अशर्फ़ियाँ मिलेंगीं। अपने-अपने प्रयत्न जारी रखो। परिश्रम करोगे तो कोई भी काम असाध्य नहीं।" गुरु ने उनसे कहा।

रंजन अपना शहर भुवनगिरि लौटा। वहाँ प्रमुख वैद्यक चंडीदास से मिलकर उसने कहा "महाराज प्लवंग के रोग की चिकित्सा के लिए आवश्यक दवा ढूँढ निकालने में मुझे आपकी सहायता चाहिये। पुरस्कार हम दोनों आधा-आधा बाँट लेंगे।"

चंडीदास ने रंजन के बारे में जानकारी प्राप्त की और उससे कहा "तुम उपासक के शिष्य हो न? वे महान व्यक्ति हैं। बहुत से युवक शारीरिक श्रम करने से डरकर उनके यहाँ विद्या प्राप्त करने नहीं जाते, उनका शिष्य बनना नहीं चाहते। कहा जाता है कि जो उनके यहाँ वैद्य-विद्या प्राप्त करते हैं, उनकी चिकित्सा-पद्धति अचूक होती है। मैं अपनी बेटी की शादी तुमसे करूँगा। हम दोनों मिलकर वैद्य करेंगे। धन की वर्षा होगी।"

चंडीदास के प्रस्ताव पर रंजन खुश तो हुआ, पर वह राजा प्लवंग के रोग के बारे में ही सोच रहा था। उसने फिर से चंडीदास से उस रोग के बारे में पूछा।

“यह एक विचित्र रोग है। मैं भी पहले चाहता था कि इस रोग की चिकित्सा के लिए दवा ढूँढ निकालूँ। किन्तु वैद्य-विद्या में किसी भी दवा के गुणों को जानने के लिए पहले कुछ प्रयोग करने पडते हैं। ऐसे रोग से कोई साधारण मनुष्य पीडित होता तो मैं प्रयोग करता। किन्तु राजा पर ऐसी दवा का प्रयोग करने का साहस कौन करेगा ? कुछ का कुछ हो जाए तो सिर कट जायेगा। इसी कारण कोई भी उस दिशा में कुछ सोचने या कुछ करने के लिए तैयार नहीं। अच्छा इसी में है कि हम भी इस दिशा में अपना दिमाग़ न खपावें।” चंडीदास ने कहा।

रंजन ने चंडीदास की बेटी से शादी की। ससुर और दामाद दोनों मिलकर वैद्य करने लगे। चंडीदास ने जनता में खूब प्रचार किया कि रंजन उपासक का योग्य शिष्य है और उसकी चिकित्सा-पद्धति अचूक है। चंडीदास ने अपने घर में उपासक की एक बड़ी तस्वीर लटका दी। उसकी महानता के बारे में अपने यहाँ आनेवाले रोगियों से बराबर कहता रहता था। तस्वीर को प्रणाम करने के बाद ही वे दोनों काम पर लग जाते थे।

उपासक के शिष्य के रूप में प्रसिद्ध हुआ रंजन। उसकी चिकित्सा सफल होती आयी। रोगी उससे बुहत ही प्रसन्न थे। उसकी आमदनी भी बढ़ती गयी। साल ही के अंदर वह एक लाख अशर्फ़ियाँ जुटा पाया।

इस बीच भंजन अपना नगर पवनगिरि पहुँचा। उस समय उसके घर के बगल ही के नंदन नामक युवक पर भूत सवार हुआ। प्रवाल नामक एक भूत वैद्य उस युवक की

चिकित्सा के लिए बुलाया गया। विषय मालूम होने के बाद भंजन ने नंदन के माता-पिता से कहा “आपके बेटे पर कोई भूत सवार नहीं हुआ है। उसका मस्तिष्क कुछ रसायनों के प्रभाव के कारण इस स्थिति पर पहुँचा है। वह प्रभाव उसे ऐसा बरतने पर बाध्य कर रहा है। मैं आवश्यक दवाइयों से उसकी चिकित्सा करूँगा और एक ही हफ़्ते में उसे बिल्कुल ही ठीक कर दूँगा। वह फिर से साधारण मनुष्य हो जायेगा।” किन्तु नंदन के माता-पिता ने उसकी बातों पर विश्वास नहीं किया। प्रवाल को उन्होंने यह बात बतायी और उससे सलाह माँगी। प्रवाल ने भयंकर रूप से गर्जना की और कहा “कालभैरव नाराज़ हो रहा है। उस वाचाल को मेरे पास भेजो।”

भंजन और प्रवाल दोनों मिले। दोनों के बीच कुछ समय तक वाद-विवाद हुआ। प्रवाल समझ गया कि भंजन बुद्धिशाली है और उसकी दलीलों में सच्चाई है। उसने उससे मीठे स्वर में कहा "साधारण वैद्य से भूत वैद्य में ही आमदनी अधिक है। किन्तु भूत वैद्य से चंगे होनेवालों की संख्या नगण्य है। तुम्हारा और मेरा वैद्य एक हो जाएँ तो, हम दोनों मिलकर रोगियों की चिकित्सा करें तो हमारी जोड़ी के मुक़ाबले में कोई टिक नहीं पायेगा। मैं अपनी बेटी से तुम्हारी शादी करूँगा। हम दोनों मिलकर यह पेशा करें।"

यह उपाय भंजन को भी सही लगा। उसने प्रवाल के बडप्पन व महत्व को स्वीकार किया और उसका शिष्य बन गया। सप्ताह के अंदर ही नंदन के रोग की चिकित्सा सफलतापूर्वक हुई। इससे प्रजा में भी गुरु-शिष्य के प्रति विश्वास जम गया।

सास-दामाद जब से हुए, तब से किसी भी रोग को वे हवा का दोष बताते और कहते कि पूजा करने पर ही यह रोग दूर हो सकता है। पूजा के नाम पर वे खूब पैसे ऐंठते थे। पूजा-प्रसाद के नाम पर भंजन दवाइयाँ देता था, जिनसे रोगी का रोग दूर हो जाता था। लोगों को लगता था कि भंजन जैसा वैद्य इस भूमि पर कोई है ही नहीं। जनता में दिन ब दिन उनके प्रति विश्वास बढ़ता जा रहा था।

इस प्रकार छे ही महीनों में भंजन ने दो लाख रुपये कमाये। किन्तु कहीं भी, कभी भी उसने यह नहीं कहा कि मैं उपासक का शिष्य हूँ। उसने यह बात बहुत ही पोशीदी रखी। उपासक का नाम बताने पर भंजन की पोल खुल जायेगी। उससे संबंधित सारे रहस्य खुल जाएँगे, क्योंकि उपासक की इतनी ख्याति थी। यही नहीं, भंजन उपासक को गुरु दक्षिणा देना भी चाहता नहीं था। वह नहीं
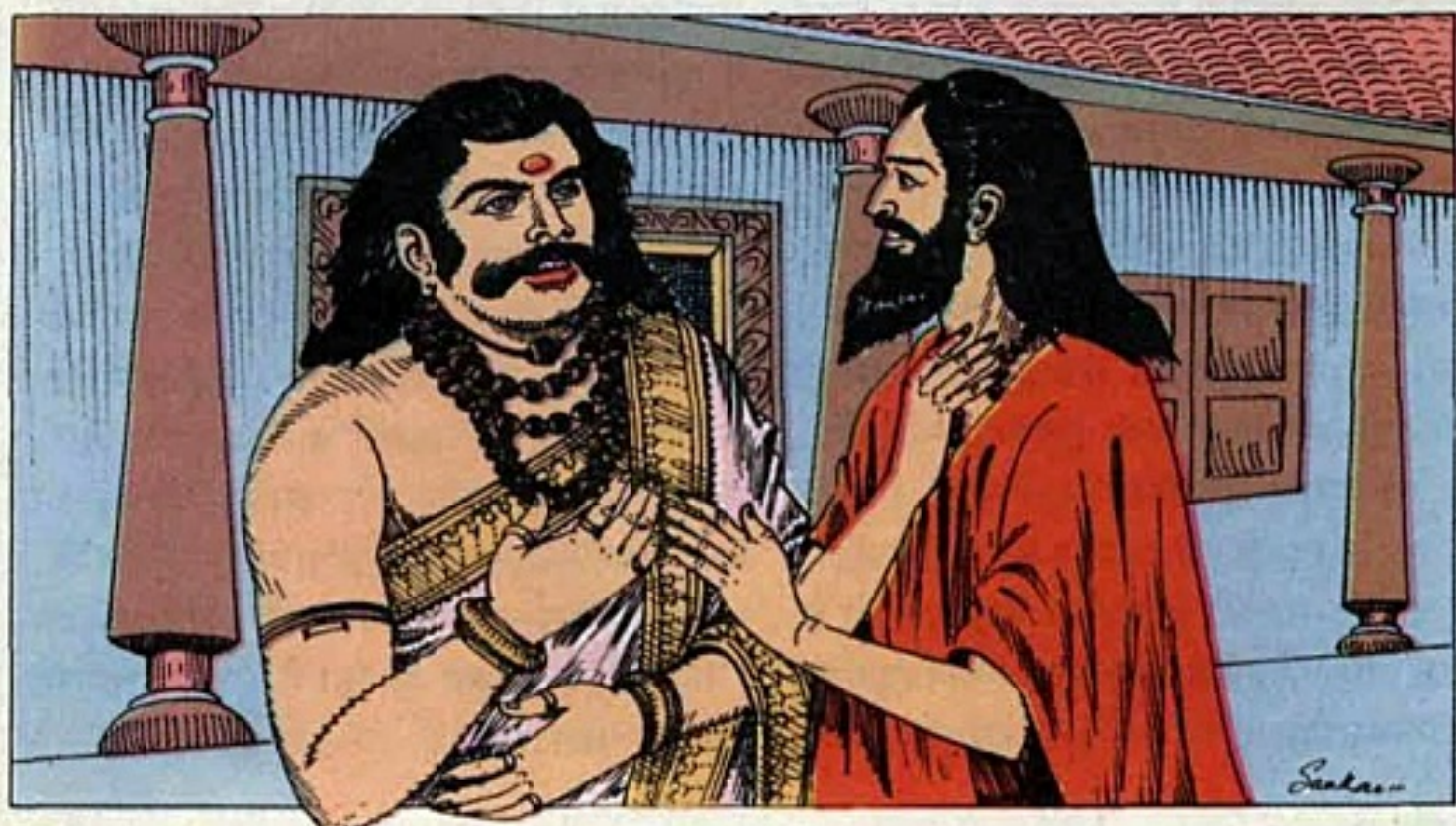
चाहता था कि लोग जान जाएँ कि वह उपासक का शिष्य है। यद्यपि भंजन की आमदनी ठोस थी पर अब पवनगिरि में उसका अच्छा नाम नहीं था। बहुत-से लोगों का मानना था कि वह एक मांत्रिक है।

एक साल के बाद उपासक ने अपने दोनों शिष्यों को अपने आने की ख़बर भिजवायी। पहले वह शिष्यों की जानकारी के बिना पवनपुर आया और भंजन के बारे में पूरा विवरण जाना। उसे वहाँ मालूम हुआ कि भंजन भूत वैद्यक है और धन कमाने के काम में जुटा हुआ है; आवश्यकता से अधिक धन कमा रहा है और धन कमाना मात्र उसका एकमात्र लक्ष्य है। उससे मिलने घर गया तो घर में होते हुए भी उसने झूठ कहलवाया कि वह घर में नहीं है। उसके ससुर प्रवाल ने कह दिया कि आपके बारे में मेरे दामाद भंजन ने कभी कुछ नहीं कहा।

"मैं भंजन का गुरु हूँ। मुझे उससे जो गुरु दक्षिणा प्राप्त होनी थी, उससे अधिक ही प्राप्त हुई। कहना कि मैं बहुत ही संतुष्ट हुआ" कहकर उपासक वहाँ से निकल पडा और भुवनगिरि पहुँचा।

रंजन ने गुरु दक्षिणा के रूप में लाख अशर्फ़ियाँ देनी चाहीं तो उपासक ने कहा "वैद्य करते हुए तुमने इतनी कम अवधि में बेशुमार धन कमाया। नित्सहाय रोगियों को लूटने से ही यह संभव हो सकता है। मैं यह धन स्वीकार नहीं करूँगा। वैद्यक का अपना एक धर्म होता है, जिसे तुमने भुलाया। तुमने इस धर्म की परवाह ही नहीं की। मैं आशा करता हूँ कि किसी दिन तुम गौरवप्रद गुरु

दक्षिणा दे पाओगे। मैं तुम्हें एक और बात कहना चाहूँगा। अपने दोनों शिष्यों के जीवन-मार्गों के बारे में पहले ही जान चुका हूँ। इसीलिए मैंने छे महीने के पहले ही राजा प्लवंग के रोग की चिकित्सा सफलतापूर्वक की। लाख रुपये कमाने के लिए वह मार्ग तुम्हारे लिए अब खुला नहीं है।" वहाँ से निकलकर उपासक गुरुकुल लौट आया।

बेताल ने राजा विक्रमार्क को यह कहानी सुनायी और कहा "राजन्, लोक में ईर्ष्या, द्वेष, मात्सर्य आदि दुर्गुणों के जो दास हो जाते हैं, उनका बरताव कभी-कभी बड़ा ही विचित्र होता है। भंजन ने तीन सालों तक गुरु के पास वैद्य शिक्षा पायी। भूत वैद्यक का सहारा लेकर उसने पर्याप्त धनार्जन किया। अपने गुरु का नाम तक नहीं लिया। ऐसे

विश्वास- घाती भंजन को उसने माफ़ कर दिया और कहा कि मेरी आशा से भी अधिक गुरु दक्षिणा मुझे प्राप्त हुई। उसी उपासक ने रंजन से गुरु दक्षिणा के रूप में देते हुए लाख रुपयों को लेने से इनकार कर दिया। रंजन अपने गुरु की तस्वीर की पूजा करता था, सभी को बतलाता रहता था कि मैं उपासक का शिष्य हूँ। फिर भी उपासक ने उसपर निंदा डाली कि वह लुटेरा है। भंजन के प्रति उसने संतृप्ति दर्शायी और रंजन के प्रति असंतृप्ति। गुरु के इस रुख पर मुझे आश्चर्य हो रहा है। मैं समझ नहीं पाया कि उपासक ने यह द्वंद्व नीति क्यों अपनायी? मेरे संदेहों के समाधान जानते हुए भी चुप रह जाओगे तो तुम्हारे सिर के टुकड़े-टुकड़े हो जाएँगे।''

विक्रमार्क ने उसके संदेहों को दूर करने के उद्देश्य से कहा ''उपासक को धन का मोह नहीं है। उसने चाहा कि अपने शिष्यों का सेवा-धर्म देखूँ। किन्तु रंजन भूल ही गया कि राजा के रोग के लिए दवा ढूँढ निकालनी है और चिकित्सा करनी है। वह अपने इस धर्म को भूलकर लोगों से पैसे ऐंठने में जी-जान से लग गया। उसने साल ही के अंदर लाखों रुपये कमाये, जो उसकी दुराशा का उदाहरण है। लोगों से वैद्य कहलाना चाहिये, सम्मानों व सत्कारों द्वारा धन कमाना चाहिये। न कि रोगियों को सताकर उनसे अधिकाधिक पैसे वसूल किये जाएँ। ऐसे काम वैद्य-वृत्ति को कलंकित करना है, उसका अपमान करना है। इसीलिए उपासक ने रंजन से आशा व्यक्त की कि वह उस स्तर तक पहुँचे, जिस स्तर तक पहुँचकर वह गौरवप्रद गुरु दक्षिणा गुरु को दे पाये। अब रही भंजन की बात। वह दुष्ट था। बहुत ही पवित्र वैद्य-वृत्ति को उसने भूत-वैद्य से जोड़ा। ऐसे स्वार्थी को, ऐसे धोखेबाज़ को भला उपासक अपना शिष्य कैसे कहे? इसलिए उसने भंजन के ससुर प्रवाल से कहला भेजा कि मेरी आशा से अधिक ही गुरु दक्षिणा मुझे प्राप्त हुई। यह सब देखते हुए स्पष्ट होता है कि उपासक में ईर्ष्या, द्वेष, मात्सर्य आदि दुर्गुण बिल्कुल हैं ही नहीं।''

राजा के मौन-भंग में सफल बेताल शव सहित ग़ायब हो गया और फिर से पेड़ पर जा बैठा।

आधार - बसुदा की रचना

शाही नगर कलकत्ता

वर्णन : मीरा नायर ◆ चित्रकार : गौतम सेन

पश्चिम बंगाल की राजधानी कलकत्ता भारत का दूसरे नंबर का विशालतम नगर है. आधुनिक युग में इस सदी के पहले दशक तक वह भारत की राजधानी भी था. उस समय यह ब्रिटिश साम्राज्य का दूसरा सबसे बड़ा शहर था. उसी के अनुरूप उसकी शानशौकत थी.

कलकत्ता का जनरल पोस्ट आफिस जिस स्थान पर है, वहां अंग्रेजों ने भारत में अपना पहला किला बनाया था. यह किला 1756

ई. में बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला ने ढहा दिया. तथाकथित 'ब्लैक होल' घटना तभी घटी थी. कहा जाता है कि 123 अंग्रेजों को 6 मी. x 4 मी. की एक कोठरी में बंद कर दिया गया और वे दम घुटने से मर गये. पोस्ट आफिस की इमारत के उत्तर-पूर्वी कोने में काले संगमरमर की एक तख्ती जड़ी है और वह उस दुर्घटना के सही स्थल को सूचित करती है.

बाद में अंग्रेजों ने गोविंदपुर गांव में नया किला बनाया, जो पुराने किले से ज्यादा विशाल और दुर्जेय था. उसका नाम इंग्लैंड के राजा विलियम तृतीय के नाम पर *फोर्ट विलियम* रखा गया. इस पर कभी किसी दुश्मन ने हमला नहीं किया. यही हिंदुस्तान का एकमात्र बड़ा किला है, जिस पर से कभी किसी दुश्मन पर गोली नहीं दागी गयी.

किले के चारों ओर का जंगल साफ किया गया, ताकि सैनिक वहां चांदमारी कर सकें. इस तरह लगभग चार कि.मी. लंबा और दो कि.मी. चौड़ा जो खाली स्थान निकला, वह *मैदान* कहलाता है. दुनिया के किसी भी शहर में इतना बड़ा खुला पार्क नहीं है.

सुप्रसिद्ध *ईडन गार्डन* जिसमें क्रिकेट के मैच हुआ करते हैं, मैदान में ही है. भारत का पहला क्रिकेट क्लब 1792 ई. में मैदान में ही कायम किया गया था.

रायल कलकत्ता गोल्फ क्लब, मोहन बागान फुटबाल क्लब (जिसने भारतीय फुटबाल प्रतिस्पर्धाओं में लगातार सबसे अधिक जीतें हासिल की हैं) और रायल कलकत्ता टर्फ क्लब (जिसका रेसकोर्स भारत में सबसे लंबा है) मैदान में ही हैं.

ईडन गार्डन

चौरंगी

कलकत्ता

चौरंगी स्ट्रीट अब जवाहरलाल नेहरू सरणी कहलाता है. यही हिंदुस्तान की पहली सड़क थी जिस पर गैस-बत्ती की व्यवस्था की गयी (1859). चालीस साल बाद कलकत्ता को बिजली की रोशनी प्राप्त करनेवाला प्रथम भारतीय नगर होने का गौरव मिला.

शहीद स्मारक

विक्टोरिया मेमोरियल के निर्माण में 15 बरस लगे और वह 1921 ई. में पूरा हुआ. लार्ड कर्जन ने महारानी विक्टोरिया (मृत्यु : 1901) की यादगार के रूप में इसकी कल्पना की थी और कभी-कभी इसे 'ब्रिटिश राज का ताजमहल' भी कह दिया जाता है. मकराना (राजस्थान) के संगमरमर से निर्मित यह इमारत मैदान के एक किनारे पर है.

भारत का प्रथम और अब तक एकमात्र जमींदोज रेलमार्ग मेट्रो कलकत्ता में है. 16 कि.मी. लंबी मेट्रो टॉलीगंज को दमदम से जोड़ती है.

जमींदोज रेल मेट्रो

विक्टोरि

कालीमाता कलकत्ता की अधिष्ठात्री देवी है. कालीघाट पर काली के मंदिर के निकट ही स्वर्गीया मदर तेरेसा ने सड़कों पर मरते अनाथों के लिए पहला शरणस्थल *निर्मल हृदय* कायम किया. नीले पाड़ की सादी सफेद साड़ी पहने, मदर की मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटी की भिक्षुणियां शहर की गरीब बस्तियों में और मदर द्वारा स्थापित अनाथालयों में सेवाकार्य करती देखी जा सकती हैं.

के नजारे

46 मीटर ऊंचा शहीद स्मारक असल में 1823 ई. में अंग्रेज सेनापति डेविड ऑक्टोरलोनी की यादगार में बनाया गया था. नीचे से ऊपर तक इस मीनार में 223 पौड़ियां हैं. ऑक्टरलोनी ने नेपाल युद्ध में अंग्रेजी सेना का नेतृत्व किया था.

नाखोदा मस्जिद का निर्माण 1926 ई. में हुआ. इसे सम्राट अकबर के मकबरे (सिकंदरा, आगरा) की नकल पर बनाया गया है. यह कलकत्ता की विशालतम मस्जिद है और इसमें एक साथ 10,000 मनुष्य नमाज पढ़ सकते हैं.

नाखोदा मस्जिद

मोरियल

राइटर्स बिल्डिंग पश्चिम बंगाल सरकार का सचिवालय है. मूलतः यह इमारत ईस्ट इंडिया कंपनी के क्लर्कों (राइटर्स) के रहने के लिए बनायी गयी थी. 1880 ई. में इसका नवीकरण किया गया.

राइटर्स बिल्डिंग

मदर तेरेसा

जोड़ासांको गली में ठाकुर परिवार का पुश्तैनी घर

रवींद्रनाथ ठाकुर का जन्म उत्तरी कलकत्ता में *जोड़ासांको भवन* में हुआ था. उनका देहावसान भी वहीं हुआ. रविबाबू को देशवासी श्रद्धापूर्वक गुरुदेव कहते थे. 1913 में उन्हें उनकी रचना 'गीतांजलि' के लिए साहित्य का नोबेल पुरस्कार दिया गया. वे ही पहले एशियाई थे, जिन्हें कोई नोबेल पुरस्कार मिला.

जोड़ासांको भवन में आज रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय है. यह रविबाबू के स्थापित किये विश्वभारती विश्वविद्यालय (शांतिनिकेतन) से भिन्न है.

अलीपुर में राष्ट्रीय ग्रंथागार है. यह जिस इमारत में है, वह बेल्वेडियर कहलाती थी और बंगाल के गवर्नर का निवासस्थान थी. राष्ट्रीय ग्रंथागार देश का सबसे विशाल पुस्तकालय है. इसमें लगभग 20 लाख छपी पुस्तकें और हस्तलिखित पोथियां हैं, जिन्हें 51 कि.मी. लंबे फौलादी शेल्फों पर रखा गया है. सर आशुतोष मुखर्जी का निजी पुस्तक-संग्रह भी राष्ट्रीय ग्रंथागार का हिस्सा है. यह दुनिया के सबसे बड़े निजी पुस्तक-संग्रहों में गिना जाता है.

कलकत्ता की एक और मशहूर इमारत है – *मार्बल पैलेस*. सुंदर बगीचे में स्थित इस आलीशान इमारत का निर्माण राजा राजेन्द्र मल्लिक नाम के धनी बंगाली व्यापारी ने 1835 ई. में कराया था. इसका कुछ हिस्सा दर्शकों के लिए खुला है और उसमें राजा की संग्रह की हुई कलात्मक वस्तुएं रखी हुई हैं.

राजा के वंशज अब भी इस भवन में रहते हैं और परिवार की परंपरा के अनुसार रोज दोपहर को गरीबों के लिए अन्न सत्र चलाते हैं.

मार्बल पैलेस

अक़्लमंद बूढ़ा

ग्रीक देश में एक बूढ़ा और उसकी पत्नी रहते थे। एक दिन बुढ़े ने अपनी पत्नी से कहा "अरी, पैसों की सख़्त ज़रूरत है। तुम हाट जाओ और हमारी गाय को बेच दो। मैं खुद चला जाता, किन्तु मेरे पैर में मोच आ गयी।"

बूढ़ी गाय को हाँकती हुई हाट गयी। तीन चोर भी उसके पीछे-पीछे, उसकी जानकारी के बिना आ रहे थे। उन्होंने जान लिया कि बुढ़ी गाय को हाट में बेचने ले जा रही है। उसे सस्ते दाम में खरीदने के लिए उन तीनों ने एक उपाय सोचा।

एक चोर बूढ़ी से मिला और कहा "क्या बकरी बेचने ले जा रही हो? कितने में दोगी?"

"क्या तुम अंधे हो? गाय सामने है और इसे बकरी कह रहे हो?" बूढ़ी ने नाराज़ होते हुए कहा।

चोर ने अपना सिर हिलाते हुए दुख-भरे स्वर में कहा "दादी, कहीं तुम सपने देख नहीं रही हो? यह बकरी है। तीस रुपयों में इसे बेच दो।"

बूढ़ी ने उसे अपनी छड़ी से हल्की मार मारी और आगे बढ़ गयी। थोड़ी दूर जाने के बाद दूसरा चोर बूढ़ी के पास आया। उसने पूछा "नानी, कहाँ चली?"

"हाट जा रही हूँ पोते। इसे बेचने के लिए तुम्हारे नाना ने भेजा" बूढ़ी ने कहा।

"पच्चीस रुपयों में मैं खरीद लूँगा। मुझे बेच दो।" दूसरे चोर ने कहा।

"क्या तुम्हारा सिर फिर गया? तुम्हारी मति क्या भ्रष्ट हो गयी? इस हट्टी-कट्टी गाय को बकरी के दाम पर बेच दूँ?" बूढ़ी ने कहा।

दूसरे चोर ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा "बड़ी हो गयी हो। आँखों की रोशनी जाती रही। इसीलिए बकरी को गाय कह

पचीस वर्ष पूर्व 'चन्दामामा' में प्रकाशित कहानी

रही हो ।''

''जो भी है, है । अपना रास्ता नापो ।'' कहती हुई बूढ़ी आगे बढ़ गयी । किन्तु उसका मन अशांत था । उसकी समझ में नहीं आया कि क्यों सभी गाय को बकरी कह रहे हैं ।

यों सोचती हुई थोड़ी दूर और गयी तो तीसरा चोर बूढ़ी के पास आया और कहने लगा ''सासजी, अपनी बकरी बेचेंगीं? बीस रुपयों में मैं ही खरीद लूँगा ।''

''तो यह आख़िर बकरी ही है । लगता है, जादू हो गया । मैं तो निकली गाय को लेकर'' बूढ़ी बड़बड़ाती रही ।

''सासू, तुम्हें कुछ हो गया । लगता है, तुम्हारी आँखो में, तुम्हारी बुद्धि में कोई दोष है । बीस रुपयों में मुझे बेच दो और घर जाकर घोड़े बेचकर सो जाओ ।'' तीसरे चोर ने कहा ।

''एक ने तीस रुपयों में खरीदना चाहा तो दूसरे ने पच्चीस रुपयों में । क्या इसे बीस रुपयों में ही बेच दूँ? तीस रुपये दो और ले जाओ ।'' बूढ़ी ने कहा ।

''सच कहा जाए तो यह बकरी तीस रुपयों की नहीं है । फिर भी मैं खरीद लूँगा, क्योंकि तुम बूढ़ी हो, तुमसे और चला नहीं जायेगा । थक जाओगी'' तीसरे चोर ने कहा ।

बूढ़ी ने अपनी गाय को बकरी के दाम पर बेच दिया और घर लौटी । जो हुआ, सब पति को बताया । बूढ़े ने जब उन चोरों का ब्योरा सुना, तभी जान गया कि वे पड़ोस के गाँव के शैतान जवान हैं । उसने बूढ़ी से कहा ''जो हुआ, सो हुआ । आगे जो होना है, मैं संभाल लूँगा ।''

बूढ़ा बाहर गया और एक ही तरह के दो खरगोश खरीदे । एक खरगोश को उसने टोकरी में बंद किया और दूसरे खरगोश को टोकरी में रखकर निकलते हुए अपनी पत्नी से कहा ''अरी ओ धन्नू, आज हमारे घर मेहमान आनेवाले हैं । शहद की रोटियाँ, खीर, बतख का गोश्त गरम करके तैयार रख । घर आकर मैं तुमसे पूछूँगा कि खाना क्या बनाया है, तो तुम कहना कि खरगोश ने जैसे बताया, वैसे ही बना है'' यों कहकर उसे सावधान करके चला गया । उसने निकलने के पहले वही बात फिर एक और बार दुहरायी और कहा कि मैंने जो कहा, जैसा कहा, वही दुहराना । कुछ और न कहना ।

बूढ़े के पड़ोस के गाँव में पहुँचते-पहुँचते

तीनों चोर शराब के अड्डे पर शराब पी रहे थे और मज़ा लूट रहे थे। बूढ़े को देखकर उन्होंने उससे कहा "अरे बूढ़े, तुम्हारी पत्नी को यह भी मालूम नहीं कि गाय है या बकरी।" वे उसका मज़ाक उड़ाने लगे।

"मेरी पत्नी की बात कर रहे हो ना। वह सठिया गयी है। उसका दिमाग़ काम नहीं कर रहा है। परंतु क्या हुआ? रसोई बनाने में उसकी बराबरी का कोई है ही नहीं।" बूढ़े ने कहा।

एक चोर ने कहा "अच्छा हुआ, कम से कम वह काम तो बखूबी जानती है।"

बूढ़ा नाटक कर रहा था, मानों गहरी सोच में पड़ा हो। "आज क्या बनाने को कहूँ? खीर खाने की इच्छा है। बतख का गरम-गरम माँस भी खाएँगे। शहद की रोटियाँ भी।" कहते हुए उसने टोकरी से खरगोश को निकाला और कहा "अरे, तुम तुरंत घर जाओ। जाकर माँ से कहना खीर, बतख का मांस, और शहद की रोटियाँ बनाये।" यों कहकर उसने उसे छोड़ दिया। वह छलांग मारता हुआ, फुदकता हुआ पल भर में गायब हो गया।

"अजीब लग रहा है। क्या सचमुच वह खरगोश घर जाकर सब कुछ बतायेगा, जो-जो तुमने उसे बताया?" चोरों ने पूछा।

"क्यों नहीं बतायेगा? जब वह इतना था, तब से पाल रहा हूँ। बचपन से ही मैंने उसे बातें करना सिखाया। मेरी बात का तुम्हें एतबार नहीं तो मेरे साथ मेरे घर आओ और खाना खाओ।" बूढ़े ने कहा।

तीनों बूढ़े के साथ-साथ उसके घर आये। बूढ़े ने बूढ़ी से पूछा "क्या रसोई बनी?"

"खरगोश ने जो कहा, वही बनाया।" बूढ़ी ने कहा। उसने चारों को खाना परोसा। बूढ़े ने खरगोश को जो बताया, उसी के मुताबिक़ तैयार रसोई को देखकर चोर धोखा

खा गये।

वे तीनों आपस में थोड़ी देर तक कानाफूसी करते रहे और आख़िर उस खरगोश को बेचने के लिए कहा।

"खरगोश को बेचूं? यह तो होगा ही नहीं" बुढ़ेने कहा। वे हज़ार रुपये देने के लिए तैयार हो गये, परंतु बुड्ढा टस से मस न हुआ।

"जब वे इतना हठ कर रहे हैं, तो बेच दो न। कहते थे न कि पैसों की सख्त ज़रूरत है" बूढ़ी ने कहा।

"जिस तरह हमारी गाय बदल गयी, मुझे डर है कि उसी तरह कहीं हमारा खरगोश भी बदल न जाए" बूढ़े ने कहा।

तीनों चोरों ने एक-दूसरे को देखा और कहा "बुड्ढे, डरने की कोई बात नहीं।"

बूढ़े ने हज़ार रुपये लिये और टोकरी सहित अपना दूसरा खरगोश उन्हें दे दिया।

अपना गाँव लौटते हुए चोरों ने कहा "पहले इसे अपने-अपने घर भेजेंगे और अपनी-अपनी पत्नियों को बतलवायेंगे कि आज अपने-अपने घर में क्या-क्या पकवान बने।" उन्होंने एक-एक करके उस खरगोश को अपनी-अपनी ज़रूरतें बतायीं और खरगोश को छोड़ दिया। वह त्वरित गति से कहीं भाग गया।

फिर तीनों अपने-अपने घर गये। उन्हें यह जानने में देर नहीं लगी कि खरगोश आया नहीं और बुड्ढेने उन्हें धोखा दिया। तीनों बुड्ढे के घर आये और उसे गालियाँ देने लगे।

बड़ी ही सहनशक्ति के साथ उनकी गालियों को सुनने के बाद बुड्ढे ने कहा "खरगोश को भेजने के पहले उसके बदन पर हाथ फेरते रहे?"

उन्होंने मान लिया कि ऐसा नहीं किया।

बूढ़े ने कहा "तब तो वह मुट्ठी भर की हवा में बदल गया होगा।"

"खरगोश क्या कहीं हवा में बदल सकता है? तुम कहीं पागल तो नहीं हो गये?" तीनों चोरों ने कहा।

"जब इतनी बड़ी गाय, बकरी में बदल सकती है तो क्या खरगोश हवा में बदल नहीं सकता?" बूढ़े ने पूछा।

चोरों की समझ में आ गया कि बुड्ढे ने जमकर बदला लिया।

वीर पांड्य कट्टबोम्मन

आलेख : मीरा उगरा ◆ चित्र : गौतम सेन

अठारहवीं सदी में तमिलनाडु के सामंत, जो पालयक्कार कहलाते थे, बड़े शक्तिशाली हो गये थे. वे आर्काट के नवाबों के प्रतिनिधि थे और उन्हीं के नाम पर राजस्व वसूल करते थे. उनके किले बड़े मजबूत थे और सेना जुझारू. सन 1792 में इन बहत्तर पालयमों (जमींदारी) से लगान वसूलने का अधिकार आर्काट नवाब ने ईस्ट इंडिया कंपनी को सौंप दिया.
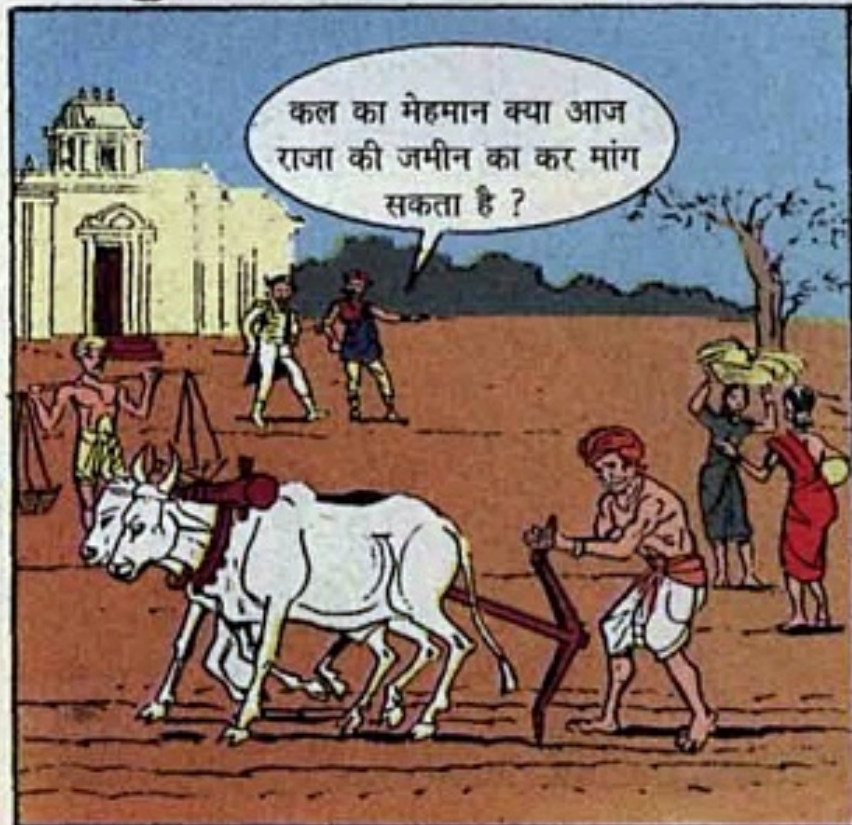
वीर पांड्य को समझा-बुझा कर मि. जैक्सन से मिलने भेजा गया. जैक्सन नेल्लै जिले का जिलाधीश नियुक्त हुआ था. किंतु –

5 सितंबर 1799 को मेजर बैनरमैन ने पंजालंकुरिचि दुर्ग पर घेरा डाल दिया.

वही हुआ भी. अंग्रेजी फौज की नयी कुमुक आयी और किले पर टूट पड़ी. इस बार हमलावरों की जीत हुई. अंग्रेजी सैनिक किले में घुस गये.

वीर पांड्य भाग निकलने में सफल हो गया था. किंतु...

...उसे शरण देने को कोई तैयार न था.

वीर पांड्य एक वन में छिपा था कि अचानक पुदुकोट्टै के राजा ने उसे घेर लिया.

मेजर बैनरमैन ने ईस्ट इंडिया कंपनी की ओर से वीर पांड्य पर मुकद्दमा चलाया और उसे फांसी की सजा सुनायी. उसे अनेक पालयक्कारों की मौजूदगी में फांसी पर चढ़ाया गया. बैनरमैन ने उसके अंतिम क्षणों के बारे में लिखा है :
"उसने अपने दायें और बायें खड़े पालयक्कारों पर घृणा और निराशा से भरी नजर डाली और फिर एकदम निर्भीक और दृढ़ कदमों से आगे बढ़ गया."

वीर पांड्य कट्टबोम्मन ने इमली के पेड़ के नीचे खड़े हो कर फांसी का फंदा स्वयं अपने हाथों से गरदन में पहन लिया.

अर्जुन थोड़ी दूर और आगे गया और कौरवों पर बाणों की वर्षा बरसायी । ज़ोर से शंख फूँका । उस ध्वनि को सुनकर गायें मोयने ऊँचा करके लौटकर दौड़ने लगीं । लगता था कि अर्जुन जिस काम पर आया, वह पूरा हो गया । परंतु जब वह दुर्योधन का सामना करने जाने लगा तब सभी कौरव वीर उसके सम्मुख आये । अर्जुन ने उनमें से कर्ण को देखा तो उसने उत्तर से कहा कि वह रथ कर्ण की ओर ले जाए । कर्ण के साथ जितने भी कौरव योद्धा थे, अर्जुन से युद्ध करने लगे । अर्जुन ने उन सबको हराया और कुछ योद्धाओं को मार भी डाला । युद्ध तीव्र होता गया । अर्जुन के हाथों जो मरे, उनमें कर्ण का भ्राता भी था । इस दृश्य को देखकर कर्ण क्रोध से भड़क उठा । उसने डटकर अर्जुन का सामना किया । अर्जुन भी यही चाहता था । दोनों में युद्ध हुआ । शेष सभी इस घोर युद्ध को देखते रह गये । बहुत देर तक युद्ध करने के बाद कर्ण थक गया और पीछे चला गया ।

कौरवों ने अर्जुन के युद्ध-नैपुण्य की ही भरपूर प्रशंसा नहीं की, बल्कि उत्तर के रथ चलाने के प्रावीण्य की भी प्रशंसा की ।

कर्ण जैसे ही पीछे हटा, कौरव वीरों ने अर्जुन पर एक साथ धावा बोल दिया । उनमें से कृपाचार्य को अर्जुन ने चुना और अपने रथ को उनकी ओर ले जाने के लिए उत्तर को आदेश दिया । अर्जुन के रथ ने कृपाचार्य के रथ की प्रदक्षिणा की और सामने लाकर खड़ा कर दिया गया । अर्जुन ने शंख फूँका । दोनों में घमासान लड़ाई हुई । आख़िर कृपाचार्य पराजित हुए । कृपाचार्य जैसे ही पीछे हटे, द्रोण अर्जुन से युद्ध करने के लिए आगे आये । अर्जुन ने द्रोण को सविनय प्रणाम किया और कहा "गुरुवर, हमने वनवास करते हुए अनेकों

कष्ट सहे। हमसे क्रोधित मत होइये। आप पहले बाण मुझपर चलाइये, तभी मैं आप से युद्ध करूँगा।''

द्रोण ने अर्जुन की इच्छा के अनुसार उसपर बाण चलाया। तदुपरांत दोनों ने युद्ध किया। सच कहा जाए तो द्रोण की बराबरी का कोई योद्धा कौरवों की सेना में है ही नहीं। अर्जुन ने अपनी बाण-वर्षा में उन्हें डुबो दिया, जिसे देखकर कौरव सेना में हाहाकार मच गया।

द्रोण के पुत्र अश्वथ्यामा से अपने पिताश्री की यह स्थिति देखी नहीं गयी। वह अर्जुन पर बाण बरसाने लगा। अर्जुन ने अपना रथ उस ओर मोड़ा, जहाँ से अश्वथ्यामा बाण बरसा रहा था। अश्वथ्यामा ने अर्जुन को बहुत देर तक परेशान किया। परंतु अंत में अर्जुन की ही जीत हुई।

यों अर्जुन कौरव योद्धाओं पर पिल पड़ा। फिर से कर्ण, दुःश्शासन तथा कितने ही कौरव योद्धाओं से उसने युद्ध किया। वे सबके सब अर्जुन की वीरता के सामने टिक नहीं पाये। वे युद्धक्षेत्र से भाग खड़े हुए। तब भीष्म युद्ध करने आगे बढ़े।

दोनों ने एक दूसरे पर अस्त्रों का प्रयोग किया। युद्ध लंबी अवधि तक होता रहा। आख़िर भीष्म होश खो बैठे और रथ में ही गिर गये। उनका सारथी रथ दूर ले गया।

दुर्योधन अब युद्ध करने आगे आया। दोनों में तीव्र युद्ध हुआ। अर्जुन ने अपना एक बाण दुर्योधन की छाती में घुसाया। दुर्योधन यह चोट सह नहीं सका और रथ लेकर पीछे हट गया। भागते हुए दुर्योधन को संबोधित करके अर्जुन ने ताने कसे।

दुर्योधन में रोष उभर आया और अर्जुन से पुनः युद्ध करने के लिए लौटा। उसके साथ-साथ शेष कौरव वीर भी आये। उन सबसे युद्ध करते हुए अर्जुन ने उनपर सम्मोहनास्त्र फेंका। फलस्वरूप सबों के हथियार उनके हाथों से फिसल गये और सबके सब बेहोश हो गये।

तब अर्जुन ने उत्तर से कहा ''उत्तर, पगहे छोड़ दो। शीघ्र जाओ और उन योद्धाओं की पगडियाँ ले आओ। उत्तरा चाहती थी न कि रंगबिरंगे वस्त्र अपने गुडिये सजाने के लिए उसे चाहिए। उन पगडियों में से कृपाचार्य की पगडी श्वेत है, कर्ण की हरी है, दुर्योधन व अश्वथ्यामा की पगडियों का रंग नीला है। मैंने भीष्म पर जो अस्त्र फेंका, वह उन्हें पीडित

नहीं करेगा। अतः तुम उनके पास जाना ही मत।''

उत्तर ने उनकी पगडियाँ लीं और तुरंत लौटकर रथ में आ बैठा। वह जब सेना के बीच में से जाने लगा तब भीष्म ने अर्जुन पर बाण बरसाये और उसे रोका। अर्जुन ने भीष्म के रथ में जुते घोड़ों को मार डाला और भीष्म को बाण बरसाने से रोक डाला।

इतने में दुर्योधन होश में आया। निश्चिंत जाते हुए अर्जुन को देखकर दुर्योधन ने अपने योद्धाओं से कहा ''क्यों इसे यों निश्चिंत जाने दे रहे हो? देखना, यह यहाँ से बचकर न जाए।''

भीष्म ने कहा ''तुम्हारी बुद्धि क्या घास चरने गयी? जब सबों के अस्त्र हाथों से फिसल गये और जब सबों ने अपनी सुध खो दी, तब अर्जुन चाहता तो सबको मौत के घाट उतार सकता था, किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। उसने तो केवल हमारी पगडियाँ लीं। अब ही सही, अपनी हार मान लो। गायों को ले जाने दो।''

भीष्म के कहे अनुसार कौरवों ने अपनी पराजय स्वीकार की और वापस चले जाने का निश्चय किया। उनको लौटते हुए देखकर अर्जुन बहुत प्रसन्न हुआ। उसने भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वथ्यामा तथा अन्य कौरव वीरों पर अपने नमस्कार-बाण फेंके। यों उसने अपनी कृतज्ञता जतायी। आख़िर उसने दुर्योधन पर एक बाण चलाकर उसका मुकुट नीचे गिरा दिया।

फिर उसने उत्तर से कहा ''शत्रुओं के

छक्के छुड़ा दिये। उन्हें बुरी तरह से हराया। गोगणों की रक्षा की। अब वापस चलो।''

रथ एक और बार शमी वृक्ष के पास रुका। पांडवों के अस्त्र वृक्ष पर रख दिये गये। अर्जुन अब सारथी के स्थान पर बैठ गया और कहा ''अगर तुम्हारे पिता को मालूम हो जाए कि पांडव अब तक उनके ही आश्रय में रहे तो वे घबरा जाएँगे। इसलिए उनसे कहना कि तुम्हीं ने कौरवों से युद्ध किया और उन्हें बुरी तरह से हराया।''

''महानुभाव, ऐसा युद्ध मुझ जैसे साधारण मनुष्य से हो ही नहीं सकता। फिर भी जब तक आप अनुमति नहीं देंगे, यह रहस्य, रहस्य ही बनकर रहेगा। मैं कह दूँगा कि मैंने ही यह युद्ध जीता।'' उत्तर ने कहा।

"हम थोड़ी देर तक यहीं कहीं विश्राम करेंगे। घोड़ों को पानी पिलायेंगे और मध्याह्न के उपरांत नगर लौटेंगे। इस बीच अपने पशु-पालकों को नगर भेजो और अपने पिता से कहने को कहो कि तुम्हीं न युद्ध जीता" अर्जुन ने सलाह दी। इस बीच विराट ने सुशर्मा को युद्ध में हराया और नगर लौटा। दरबार में प्रमुख व्यक्तियों ने तथा ब्राह्मणों ने उसका अभिनंदन किया।

विराट ने पूछा कि उत्तर कहाँ गया? अंत:पुर की स्त्रीयों ने विराट से कहा कि कौरव गोगणों को पकड़कर ले गये। उन्हें छुड़ाने उत्तर गये हुए हैं। बृहन्नला भी उनकी सहायता करने उनके साथ गयी हैं।

यह समाचार सुनकर विराट घबरा गया। उसने अपने मंत्रियों से कहा "सुशर्मा से युद्ध करने के बाद जितने भी हमारे योद्धा जीवित हैं, उन सबको उत्तर की सहायता करने फ़ौरन भेजो। एक नपुंसक को अपना सारथी बनाकर युद्ध करने मेरा पुत्र चला गया। पता नहीं वह जीवित है या नहीं। पहले इसकी जानकारी पाओ।"

विराट का भय व घबराहट देखकर धर्मराज ने मुस्कुराया और कहा "बृहन्नला के सारथी होते हुए आपके पुत्र का अहित करने का कोई साहस नहीं कर सकता। आपका पुत्र विजयी होकर लौटेगा। आप निश्चिंत रहिये। कौरव की सेना ही क्यों, देव-असुरों की सेना भी दुम दबाकर भाग निकलेगी। उसके सामने टिक नहीं सकेगी।"

इतने में समाचार भी मिल गया कि उत्तर ने शत्रुओं को हराया और गायों को कौरवों से छुड़ाया। धर्मराज ने तब कहा "उत्तर का सक्षेम लौटना शुभ समाचार है। बृहन्नला जब सारथी हो, तब जीत मेरी दृष्टि में कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है।"

पुत्र की विजय का समाचार सुनते ही विराट के आनंद की सीमा न रही। समाचार लानेवालों को उसने सुवर्ण वस्त्रों से ओढ़ा और आदेश दिया कि राज-मार्ग सजाये जाएँ, मंगल वाद्यों से उत्तर का स्वागत किया जाए। फिर उसने सैरंध्री से कहा "जाओ, पासे ले आओ। कंक से जुआ खेलना है।"

दोनों जुआ खेलने बैठ गये। तब विराट ने धर्मराज से कहा, "देखा कंकभट्ट, मेरे पुत्र ने कितने ही महावीरों का सामना अकेले ही किया और उन्हें पराजित किया। इससे बढ़कर मुझे और क्या चाहिये ?"

धर्मराज ने कहा "सारथी जब कि बृहन्नला हो, तब भला क्योंकर नहीं जीतेगा।"

विराट उसकी बातों पर नाराज़ हो गया। उसने धर्मराज से कहा "अधम ब्राह्मण, वह नपुंसक कहाँ और मेरा पुत्र कहाँ। मेरे पुत्र से उसकी कैसी समानता? तुम्हारा इतना साहस? तुम इतना भी नहीं जानते कि क्या कहना चाहिये और क्या कहना नहीं चाहिये। इस एक बार के लिए तुम्हें क्षमा कर देता हूँ। अगर एक और बार यों बोलने का साहस किया तो तुम्हारे प्राण-पखेरू उड़ जाएँगे।"

धर्मराज ने शांतपूर्वक कहा "भीष्म, द्रोण, अश्वथ्थामा, कर्ण, कृपाचार्य जैसे महायोद्धा कौरव सेना में हैं। ऐसे योद्धाओं से भरपूर सुसज्जित कौरव सेना को इंद्र भी हरा नहीं सकते। उन्हें हराने की शक्ति केवल बृहन्नला मात्र में है। ऐसे अद्भुत पराक्रमी बृहन्नला के होते हुए आपके पुत्र की विजय मुझे कोई आश्चर्यजनक नहीं लगती। वह उसी के कारण इतने वीरों को जीत पाया।"

विराट ने आग बबूला होते हुए कहा "फिर वही बात दुहरा रहे हो?" कहकर उसने धर्मराज पर पासे फेंके, जो उसकी नाक को जा लगे। नाक पर चोट आयी और रक्त बहने लगा। रक्त के नीचे गिरने के पहले ही वहीं बैठी हुई द्रौपदी ने अपना हाथ रख दिया, जिससे रक्त उसके हाथ में गिरने लगा। बाद उसने जान लिया कि धर्मराज का क्या उद्देश्य है तो सोने का एक बरतन ले आयी। अब धर्मराज की नाक से बहनेवाला रक्त बरतन

में भरता गया।

इतने में द्वारपालकों ने संदेश दिया कि उत्तर और बृहन्नला पधारे हुए हैं।

"उन दोनों को देखने के लिए मैं लालायित हूँ। उन्हें तुरंत अंदर ले आओ।" द्वारपालक से विराट ने कहा।

धर्मराज ने द्वारपालक से रहस्यपूर्वक कहा, "बृहन्नला को मत ले आना। उत्तर मात्र को ले आना। बृहन्नला ने व्रत ले रखा है कि युद्ध के अलावा कहीं, किसी और ने मुझे घायल किया, तो उन्हें मार डालूँगा, उन्हें जीवित नहीं छोड़ूँगा। मेरा बहता रक्त देखेगा तो तुम्हारे राजा को सपरिवार सहित यहीं का यहीं मार डालेगा।"

बाद उत्तर मात्र विराट के पास आया। पिता के पैरों को प्रणाम किया। फिर धर्मराज

Sankar
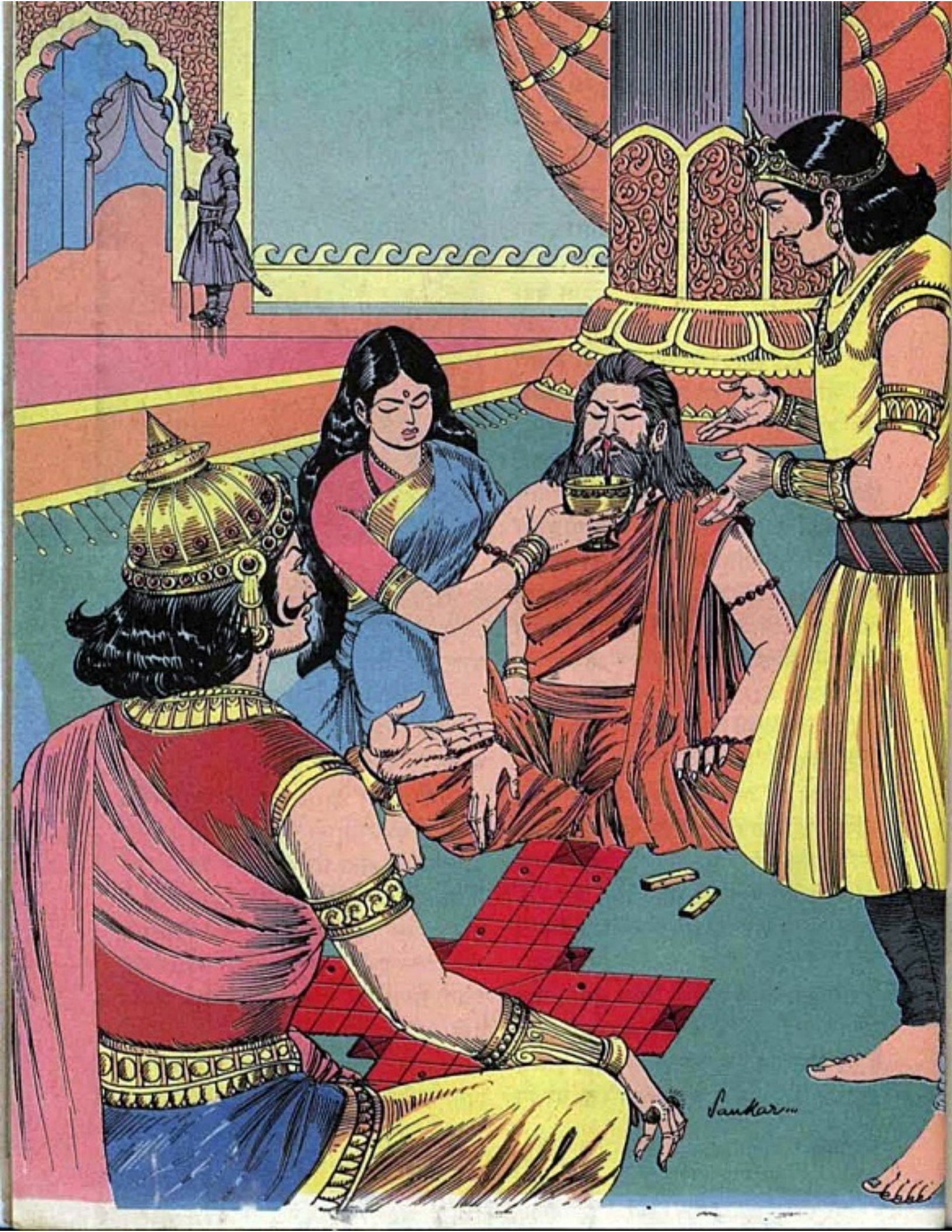
के पाँवों को छूकर नमस्कार किया। धर्मराज की नाक से प्रवाहित होते हुए रक्त को देखकर बहुत ही दुखी हुआ। पूछा "किसने इस महाशय को घायल किया? किसने यह गंदा काम किया ?"

"यह पागल, यह नासमझ तुम्हारी प्रशंसा न करके उस नपुंसक की प्रशंसा के गीत गाये जा रहा था। नाराज़ होकर मैंने ही इसे घायल किया।" विराट ने कहा।

"कितनी बड़ी ग़लती हो गयी आपसे। इनका क्रोध आपको भस्म न कर दे, इसके पहले ही इनसे क्षमा मांग लेना।" उत्तर ने पिता को समझाया।

विराट ने पुत्र के कहे अनुसार धर्मराज से क्षमा माँगी। धर्मराज ने कहा "राजन्, मेरा क्रोध कभी का शांत हो गया। मेरा रक्त भूमि पर गिरता तो तुम्हारे देश का अहित होता, जिसकी मुझे बड़ी चिंता थी।"

धर्मराज की नाक से रक्त का बहना बंद हो गया। थोड़ी देर बाद उत्तर बृहन्नला को अंदर ले आया। अंदर आते ही बृहन्नला ने विराट को और कंक को हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

विराट उत्तर से ज़ोर से कहने लगा, जिसे बृहन्नला भी सुने "पुत्र, तुम सचमुच ही मेरे योग्य पुत्र हो। तुम्हारे जैसे शूर-वीर बिरले ही होते हैं। कर्ण जैसे पराक्रमी से तुम कैसे युद्ध कर सके? भीष्म जैसे महा-योद्धा पर कैसे विजय पा सके? द्रोण और उनके पुत्र अश्वथ्थामा महाशूर हैं। उनके बाणों के सामने कैसे टिक पाये? कृपाचार्य का नाम सुनते ही वीर भी भय से कांप उठते हैं। ऐसे महान वीरों से युद्ध करके तुमने विजय प्राप्त की। अपनी गायों को छुड़ाकर ले आये। तुम अनुमान भी नहीं लगा सकोगे कि मैं कितना प्रसन्न हूँ। तुम्हारी वीरता इतिहास के पन्नों में सुवर्ण अक्षरों में लिखी जायेगी।"

पिता की प्रशंसाओं को सुनकर दबे स्वर में उत्तर ने कहा "गायों को मैंने नहीं छुड़ाया। शत्रुओं को भी मैंने नहीं हराया। किसी भगवान ने यह सब कुछ किया। शत्रुओं को देखते ही भाग खड़े मुझे उन्होंने रोका और मेरे रथ में बैठ गये। मुझे सारथी बनाया और युद्ध करके जीते।"

- सशेष

‘चन्दामामा’ की ख़बरें

जानते हो बिजली का धक्का क्या होता है?

बच्चों को बिजली के पास जाने से या बिजली के साधनों के पास जाने से हम रोकते हैं और सावधानी बरतते हैं, क्योंकि धक्का लगने का भय

है। उन्हें बिजली के पास भेजना प्राणों के साथ खिलवाड़ साबित हो सकता है। किन्तु केरल के कोइलोण नामक शहर के राजमोहन की बात अलग है। उसके लिए बिजली का धक्का एक खेल के समान है। जब वह तेरह साल का किशोर था, तब उसे जीवन से विरक्ति हो गयी। मरने के उद्देश्य से वह बिजली के खंभे पर चढ़ गया और जीवित तारों को छू लिया। आश्चर्य। उसे कुछ नहीं हुआ। उसने भी महसूस किया क़ि तारों को छूने के बाद भी वह मरा नहीं। शीघ्र ही वह जान गया कि बिजली का उसपर कोई प्रभाव नहीं पड रहा है। बाद उसने इसे अपनी जीविका का आधार बनाया। वह अपना सामर्थ्य दिखाकर अब अपना पेट भर रहा है। वह अपने नंगे शरीर पर बिना ‘इन्सुलेशन’ के तारों को बाँध लेता है और उनके द्वारा लगभग ३०,००० वोल्टों की विजली प्रसारित करता है। ‘टेस्टर’ से दीखेगा कि अग्नि कण निकल रहे हैं, पर वे उसका कुछ नहीं बिगाड़ते। १९८६ में ‘वरल्ड साइन्स एंड टेकनिकल इन्स्टिट्यूट आफ इंडिया’ ने उसकी परीक्षा की। राजमोहन के शरीर-तत्व के संबंध में उनसे प्रकाश डाला नहीं जा सका। वे निर्णय नहीं कर पाये कि यह चमत्कार क्या है। अब वह ‘करंट मोहन’ के नाम से मशहूर है। १९९२ में ‘गिन्नीस बुक्स आफ रिकार्ड’ में उसका नाम दर्ज हुआ है।

सुवर्ण हृदय

पंजाब के नरेंद्र का हृदय सोने का है। दिल्ली के अस्पताल में हृदय संबंधी चिकित्सा के लिए वह भर्ती हुआ। उसकी धमनियों में जो रुकावटें थीं, उन्हें निकालनी थीं। इसके लिए डाक्टरों ने २४ कारेटवाला सोने के ‘वैर मेष’ का उपयोग किया। इसका वज़न एक ग्राम से कम है, जिसके द्वारा वे हृदय को रक्त भेज सकते हैं। साधारणतया इसके लिए ‘स्टैनलेसस्टील’ उपयोग में लाते हैं। संसार में पहली-पहली बार ‘गोल्ड मेष’ घुसाया गया। डाक्टरों का कहना है कि ‘स्टैनलेस स्टील’ से यह बेहतर है।

'चन्दामामा' परिशिष्ट १०९

हमारे देश की शोभाएँ

भरतपूर पक्षी शरणालय

भरतपूर एक ऐतिहासिक नगर है। यह दिल्ली से १८० कि.मी. की दूरी पर है। अठारहवीं शताब्दी में निर्मित एक क़िला भी यहाँ है। इस शहर के समीप ही २९ कि.मी. तक फैला हुआ नमी भरी भूमि में 'केयोलादेव नेशनल पार्क' है। पक्षियों का शरणालय यहीं है। इसे देखने के लिए कितने ही पर्यटक यहाँ आते रहते हैं।

यहाँ एक मंदिर है। इसी मंदिर के नाम पर ही इसका यह नाम पडा है। नमी भरी इस भूमि में घनी झाड़ियाँ, तालाब, नहरें, जंगल में पाये जानेवाले विस्तृत वृक्ष और उन वृक्षों के बीच में सड़े हुए लकड हैं। इस कारण पक्षियों को अंडे देने के लिए यह सुविधाजनक स्थल है। इस कारण तरह-तरह के पक्षी आकर्षित होकर यहाँ आते रहते हैं। यहाँ लगभग ३२८ जातियों के पक्षी हैं। उत्तरी सैबेरिया, चीन आदि दूर प्राँतों से भी पक्षी यहाँ आते हैं। दूर प्राँतों से आनेवाले पक्षियों में से सैबेरिया के बगुले बड़े ही आकर्षनीय होते हैं।

यह जंगल पहले भरतपूर महाराज के आखेट का केंद्र था। पर १९६४ में यहाँ शिकार करना निषिद्ध घोषित किया गया। सरकार से मांग की गयी कि यह परिरक्षित प्राँत घोषित हो। पक्षियों के प्रेमियों के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर "पक्षियों का स्वर्ग" के नाम से भरतपूर प्रसिद्ध हुआ। शरणालय के अंदर तटाकों तथा नहरों में बसने या उड़नेवाले पक्षियों को नजदीक से देखने के लिए छोटी-छोटी नावों का प्रबंध किया गया है। अंदर कुछ जगहों पर साइकिल व साइकिल रिक्शाओं को यहाँ चलाने की अनुमति है। यहाँ पक्षी ही नहीं, हिरणें, जंगली सुवर, मोर आदि भी हैं। कभी-कभी अजगर जैसे बड़े-बड़े सांप भी यहाँ दिखायी पड़ते हैं।

पुराणकाल के राजा :

धर्मगुप्त

चंद्रवंश का राजा धर्मगुप्त शिकार करने गया। सायंकाल तक वह शिकार करता रहा। उसके साथ जो आये थे, उन सबसे वह दूर हो गया। अंधेरा छा चुका था। रास्ता दिखायी नहीं दे रहा था। उसे स्वयं मालूम नहीं था कि वह कहाँ है। जंगली जानवरों से बचने के लिए एक पेड़ पर चढ़ गया।

उसके पेड़ पर पहुँचने के पहले ही वहाँ एक रीछ बैठा हुआ था। धर्मगुप्त को देखते ही उसने कहा "राजन्, हमें इस रात को सिंह से बचना है। लगता है, तुम बहुत थके हुए हो। आधी रात तक तुम सो जाओ। मैं तब तक जागा रहूँगा। तुम्हारी रक्षा करूँगा। तुम्हारे जाग जाने के बाद मैं सो जाऊँगा। तब क्या तुम मेरी रक्षा करोगे?"

राजा ने रीछ की शर्त मानी और टहनियों को पकड़कर सोने की तैयारी में लग गया।

थोड़ी देर बाद वहाँ एक सिंह आया और पेड़ के ऊपर बैठे हुए रीछ से कहा "मित्र, तुमने उस मानव को नीचे गिराया तो उसे खा जाऊँगा और अपना पेट भर लूँगा। मैं तुम्हें कोई नुकसान नहीं पहुँचाऊँगा।"

रीछ ने सिंह की बात मानने से इनकार कर दिया। सिंह वहाँ से चला गया।

आधी रात के बाद राजा नींद से जागा। रीछ सो गया।

थोड़ी देर बाद सिंह फिर से वहाँ आया। उसने राजा से कहा "ऐ मानव, उस रीछ को नीचे ढकेलो। ऐसा करोगो तो मैं तुम्हें कोई हानि नहीं पहुँचाऊँगा।"

दूसरे ही क्षण राजा ने रीछ को नीचे ढकेला। रीछ हड़बड़ाता हुआ जागा और नीचे की टहनी को ज़ोर से पकड़ लिया। नीचे गिरने से अपने को बचाया। उसने राजा से कहा "इतना विश्वासघात! ऐसी कृतघ्नता! तुम्हें शाप देता हूँ कि पागल हो जाओ।"

धर्मदत्त की मति भ्रष्ट हो गयी। दीर्घ काल तक उसने अनेकों कष्ट सहे। अपनी गलती पर उसे पश्चात्ताप हुआ। जैमिनि मुनि की दया से पवित्र तीर्थों में स्नान करने के बाद पुनः यथावत् साधारण मनुष्य बना।

कृतघ्नता से बढ़कर कोई पाप कृत्य नहीं, धर्मदत्त की कहानी इसका एक उदाहरण है।

क्या तुम जानते हो?

टोपियाँ

गर्मी और सर्दी से बचने के लिए ही आजकल टोपियों का उपयोग होता है। अन्यथा टोपियों का उपयोग कम हो रहा है। १९४० तक शहरों में किसी को घर से निकलना हो तो टोपी पहनकर ही निकलते थे। किन्तु आज टोपी यूनिफार्म का एक अनिवार्य हिस्सा है, धर्म-संबंधी परिधान के हिस्से के रूप में आज भी उपयोग में लायीं जा रही हैं। रशियन फर हाट इसको पहनने से शरीर की गर्मी कम नहीं होती। यह कानों को सर्दी के झोंको से बचाती है। स्पानिष सांब्रिटो टोपी के आगे का भाग मुखड़े पर गर्मी पडने नहीं देता, आँखों कोलू से बचाता है और मस्तिष्क को भी ठंडा रखता है। इसे एक प्रकार के रोमों से तैयार करने की वजह से सर्दी से भी बचाती है। उत्तर अमेरीका के रेड इंडियनों की टोपी बड़ी ही सुँदर दीखती है और अधिकार-चिन्ह लगती है। नायक बड़ी-सी बड़ी टोपी पहनता है। बिषप की टोपियाँ आर्च जैसी होती हैं। वे उनके स्तर तथा उनके बड़प्पन के चिह्न हैं। ईजप्ट में गर्मी से अपने को बचाने के लिए तथा राष्ट्रीय वेषधारण के अनुकूल टोपी पहनते हैं।

इंद्रधनुष
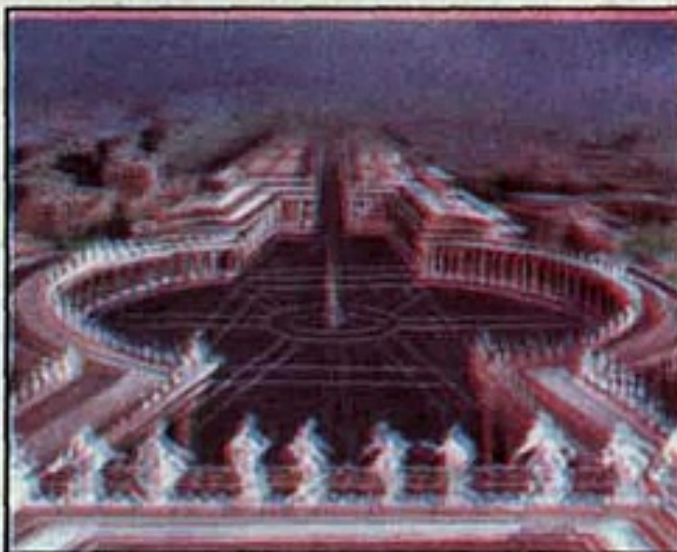
प्रकृति के अनुरूप

प्रकृति सहज अवयवों की अनुरूपता का सुँदर उदाहरण है तितली। तितली के बीचों बीच एक लकीर खींचकर परिशीलन करें तो हमें मालूम हो जायेगा कि एक तरफ के अवयवों का परिमाण व आकार तथा दूसरी तरफ के अवयवों का परिमाण व आकार एकसमान हैं। दोनों में थोड़ा-सा भी अंतर दिखायी नहीं देता। इस प्रकार अवयव एक दूसरे के आमने-सामने एक ही परिमाण और आकार में हों तो तो इसे अवयव अनुरूपता (सिम्मेट्री) कहते हैं। विभाजन रेखा को अनुरूप रेखा कहते हैं। मानव शरीर भी इसी श्रेणी में आता है। शिला शास्त्र की शास्त्रीय शैली में अनुरूपता प्रधान लक्षण है। इस शैली का यूरोप के पुनरुज्जीवन काल में पुनरुद्धार हुआ।१७,१८ वीं शताब्दियों में, १९ शताब्दी के प्रारंभ काल में बहुत ही प्राचुर्य पाया।

स्वतंत्रता की स्वर्णजयंती के अवसर पर 'चन्दामामा' की भेंट

प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम
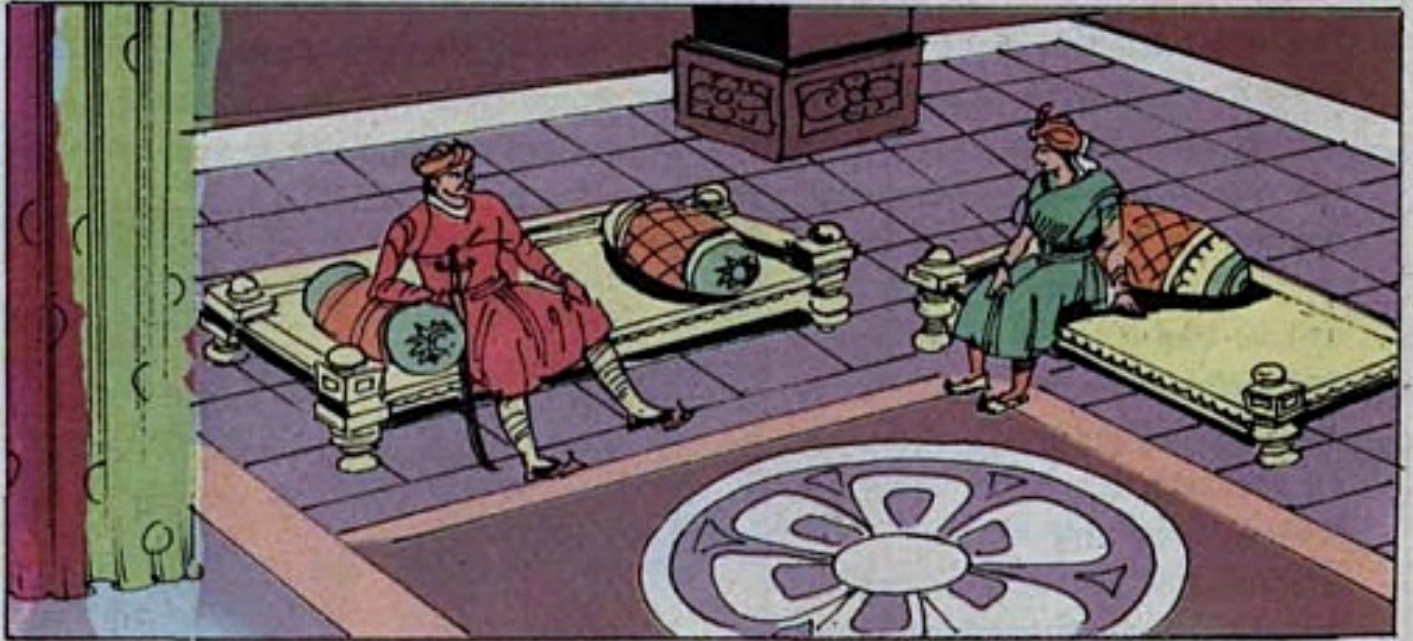
(ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के गवर्नर जनरल डलहौसी ने घोषणा कर दी कि स्थानीय शासकों को गोद लेने का कोई हक़ नहीं है। उस घोषणा-पत्र में यह भी घोषित कर दिया गया कि जिनकी अपनी संतान नहीं होती, उनका राज्य कंपनी का अपना हो जाएगा। इस निरंकुश घोषणा के कारण झान्सी लक्ष्मीबाई तथा नाना साहेब पेशवा ने अपना राजोचित स्तर खो दिया। उसी दौरान देश भर में हजारों सिपाही गोरों के दुरहंकार के विरुद्ध विद्रोह करने सन्नद्ध हो गये। बारकपुर के सिपाही मंगल पांडे ने गोरों का डटकर विरोध किया और अन्य सिपाहियों को स्फूर्ति प्रदान की। नाना साहेब रहस्यपूर्वक योजना बना रहे थे कि सब के सब सिपाही एकसाथ बगावत करें। झान्सी बाई जब नाना साहेब को देखने आयीं तब ख़बर मिली कि मेरठ में सिपाहियों ने विद्रोह का झंडा गाड़ दिया।) - बाद

मेरठ में ब्रिटिश अधिकारियों को मारने के बाद सिपाही बहुत ही उत्साह से दिल्ली की ओर निकले। दिल्ली की रक्षा के लिए जो ब्रिटिश सिपाही तैनात थे, उन्हें हरा दिया। मुगलों के वारिस बहादूरशाह हिन्दुस्तान के सम्राट घोषित किये गये। इसके पहले बहादूरशाह के सारे अधिकार छीन लिये गये थे। उन्हें एक साधारण नागरिक बनाया गया। अब ब्रिटिश शासक कुछ नहीं कर सके। वे चुप रह गये।

इन सारी बातों को जानने के बाद रानी लक्ष्मीबाई ने नाना साहेब से कहा "भैय्या, धैर्यवान मेरठ के उन युवकों के साहसपूर्ण कार्यों को देखने के बाद भी हमारा चुप रह जाना ठीक नहीं है। उनके मार्ग-दर्शन के लिए कोई नेता भी नहीं था, फिर भी उन युवकों ने स्वयं ही यह अद्‍भुत कार्य कर दिखाया। विवेक-संपन्न, साहसी के नाम से

आप प्रख्यात हैं। विश्वासपात्र अनुचरों को लेकर आप भी अद्भुत कार्य कर दिखाएँगे तो देश आपका ऋणी रहेगा।''

''बहन, तुमने सच कहा। हमें देश की भलाई के लिए ठोस क़दम उठाने होंगे। तुम्ही नहीं, मैं ही नहीं, बल्कि हम जैसे देशभक्तों को इस महायज्ञ में भाग लेना होगा। यह दैवनिर्णय है। तुम निश्चिंत होकर जाओ। सही समय पर सब कुछ ठीक होगा।''

रानी लक्ष्मीबाई झान्सी निकलीं। उनके साथ उनके अंगरक्षक भी थे। साथ ही उनकी सुरक्षा को दृष्टि में रखते हुए नाना साहेब ने और सिपाहियों को उनके साथ भेजा। झान्सी बाई सुरक्षित झान्सी लौटीं।

मेरठ के विद्रोह के बाद, ब्रिटिश अधिकारियों ने स्थानीय लोगों की चहल-पहल पर तथा उनकी चर्याओं पर कड़ी निगरानी रखी। उस समय कानपूर में वीलर नामक एक अंग्रेज़ सैनिक दलों का दलपति था। उसने नानासाहेब को ख़त लिखा कि अगर सैनिक विद्रोह करने पर तुल जाएँ तो क्या आप हमारी सहायता करेंगे? एक समय था, जब कि नाना साहेब उनके अनुकूल चलते थे। किन्तु उन्होंने अब इस बार अपने ख़त में वीलर को लिखा ''ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाए तो अपने बचाव के लिए वहाँ चले जाइये, जहाँ आपके लोग अधिक संख्या में हैं। किसी दूर प्रांत में जा छिपना ही उचित होगा।''

परंतु वीलर ने उनकी सलाह की परवाह नहीं की। बाकी अधिकारी स्थानीय लोगों के साथ बड़ी बर्बरता से पेश आने लगे। पहले से भी ज़्यादा सताने लगे। अपना रोब जमाने लगे। उनके साथ बुरा सलूक करने लगे। छोटी सी ग़लती हो जाने पर भी उन्हें मारने-पीटने लगे, उनका अपमान करने लगे।

स्थानीय उनके इस रुख से बहुत ही दुखी थे। अत्याचार चुपचाप सह लेते थे। प्रकट होने नहीं देते थे। कुछ लोग तो विरोध करते थे। ऐसे विद्रोहियों में से एक प्रमुख विद्रोही ने एक बार कहा "महाशयो, आपने पेशवा का अधिकार छीन लिया होगा। इतना करने मात्र से क्या आप समझते हैं कि पेशवा के प्रति हमारा आदर-भाव घट जायेगा? आपसे यह संभव नहीं होगा।"

वीलर ने दूर दृष्टि से काम लिया। कानपूर में एक क़िला बनवाया। उसने उसे यथासाध्य बड़ा बनवाया और जल्दी-जल्दी बनवाया, जिससे कानपूर में रहते हुए सभी ब्रिटिश परिवार वहाँ सुरक्षित रह सकें; उनके लिए आवश्यक आहार-पदार्थ वहाँ जमा कर सकें; उनकी रक्षा के लिए आवश्यक बारूद वहाँ रखी जा सके।

किन्तु वीलर ने सोचा तक नहीं था कि इतने में ही विपत्तियाँ घिर आयेंगीं। नाना साहेब के मित्र तांत्या तोपी, मंत्री अजमुल्लाखान तथा कुछ और देशभक्तों ने, गोरों की दृष्टि से अपने को बचाकर रहस्यपूर्वक एक विस्तृत विद्रोह की योजना बनायी। उन्होंने निश्चय किया कि यह विद्रोह बड़े पैमाने पर होगा। एक दिन की आधी रात को कानपूर की कंपनी के ख़ज़ाने को, हथियारों के गोदाम को अकस्मात् घेर लिया। उस भवन के चारों ओर ब्रिटिश सैनिकों का पहरा था। दोनों के बीच बंदूकें चलीं। इस लड़ाई में कुछ विद्रोही भी मारे गये। किन्तु दो घंटों के अंदर ही वह भवन विद्रोहियों के अधीन हो गया।

वीलर ने अपनी असहायता को भाँपा और तुरंत ब्रिटिश के परिवारों के सदस्यों को नवनिर्मित क़िले में भेज दिया। ब्रिटिश परिवार के सदस्यों के झुंड क़िले में पहुँच गये। उस समय विद्रोहियों ने उनका रास्ता नहीं रोका। किसी भी प्रकार की हानि उन्हें नहीं पहुँचायी। "हमें अपना बल तथा शत्रुओं के बल को तोलना चाहिये। तभी हमें कार्यक्षेत्र में उतरना चाहिये। जब हमें पूरा विश्वास हो जायेगा कि विजय हमारी होगी, तभी हमें हमला करना चाहिये। आगे, पीछे सोचे बिना हमला कर बैठना अनुचित है।" नाना साहेब की सलाह के कारण ही उन्होंने यहाँ युद्ध नहीं किया।

ब्रिटिश परिवार जब सुरक्षित रूप से क़िले में पहुँचे, तब नाना साहेब ने वीलर को ख़त

लिखा कि विद्रोही किसी भी समय पर कानपूर के क़िले को घेर सकते हैं।

एक अनुयायी ने नाना साहेब से पूछा "क्या उन्हें पहले ही चौकन्ना करना आवश्यक है?"

"हाँ, आवश्यक है। यह सच है कि अंग्रेज़ों ने हमारे भूभाग पर आधिपत्य जमा लिया। उन्होंने हमारे विरुद्ध षड्यंत्र रचे। कुतंत्र अपनाये। परंतु जो युद्ध उनके विरुद्ध हम कर रहे हैं और करनेवाले हैं, उन्हें मालूम हो जाना चाहिये कि हम खुल्लमखुल्ला अपना हर क़दम आगे बढ़ा रहे हैं। छिपा-छिपाकर या छिपकर हमें कोई काम करना नहीं चाहिये। हम तो उनसे युद्ध करने के लिए तैयार हैं। इस स्थिति में हमारा सामना करने के लिए उन्हें एक मौक़ा दें तो इसमें क्या ग़लती है?" नाना साहेब ने अपने अनुचरों से कहा।

किला घेरा जाने लगा। क़िले में तैनात सिपाहियों ने यद्यपि युद्ध-विद्या में प्रशिक्षण पाया, परंतु विद्रोहियों का सामना नहीं कर सके। उनके साहस के सम्मुख टिक न सके। थोड़े ही दिनों में बारूद ख़तम हो गयी। उसके बाद आहार-पदार्थ ख़तम हो गये। आख़िर क़िले में पानी की भी कमी हो गयी। दूसरा चारा न होने के कारण ब्रिटिश अधिकारियों ने संधि को ही अपना मार्ग चुना और सफ़ेद झंडा फहराया।

नाना साहेब ने उन्हें आज्ञा दी कि वे अपने आपको समर्पित कर दें। सब अधिकारी क़िले के बाहर आये। विद्रोही उन्हें नाना साहेब के पास ले आये। "तुम्हारा काम हो गया। अब तुम लोगों का क्या किया जाए" नाना साहेब ने अंग्रेज़ों से पूछा। एक अधिकारी ने सविनय कहा "इलाहाबाद चले जाएँगे और वहाँ अपने देशवासियों के साथ रहेंगे।"

लंबी चर्चा के बाद विद्रोहियों ने निर्णय किया कि ब्रिटिशवालों को नावों में बिठाकर इलाहाबाद भेज दिया जाए। उसके लिए आवश्यक प्रबंध बड़ी ही तेज़ी से हो गये। कुछ फिरंगियों ने शिकायत की कि नावें यात्रा करने लायक नहीं हैं। नाना साहेब ने धन का प्रबंध किया और नावें दुरुस्त करवायीं।

एक दिन सूर्योदय के समय लगभग हज़ार अंग्रेज नदी में पड़ीं नावों में पहुँचे। तांत्या तोपी की आज्ञा के अनुसार नावें इलाहाबाद की ओर रवाना हुईं।

किन्तु इतने में एक अप्रत्याशित घटना घटी। नावें जब निकल रही थीं, तब उन्हें देखने के लिए हज़ारों की संख्या में लोग नदी

के किनारे इकट्ठे हो गये । उनमें से बहुत-से ऐसे थे, जिनके पिता, चाचा, भाई या परिवार का कोई न कोई सदस्य ब्रिटिश अधिकारियों के अत्याचारों का शिकार हुआ । यह समाचार आग की तरह फैला कि कानपूर में कंपनी के शासन का अंत हो गया तो अड़ोस-पड़ोस के गाँवों से कितने ही सैनिक वहाँ आये । सैनिकों ने अकस्मात बंदूकें चलायीं । इससे उत्साहित होकर कुछ लोग नदी में कूद पड़े और उन सबकों पानी में खींचा, जो नावों में बैठे हुए थे । मिनिटों में उस दृश्य ने भयानक रूप लिया । विद्रोही यह दुहरा-दुहराकर उन्हें मारने लगे कि यह ज़िन्दा रह गया तो फिर हमें मारने वापस आयेगा । साथ ही उनमें प्रतिशोध की ज्वाला भी सुलग रही थी ।

जनता में आक्रोश भरा हुआ था । वे यह सोचने के लिए भी तैयार नहीं थे कि हमारे इस काम से नेता खुश होंगे या नहीं । उनमें से कुछ लोगों को मालूम था कि विशेष रूप से नाना साहेब ऐसे कामों का बिल्कुल समर्थन नहीं करेंगे । किन्तु उन्होंने यह बात भी भुला दी और बड़ी ही निर्दयता के साथ अंग्रेज़ों को मारते रहे । अंग्रेज़ों ने गिड़गिड़ाया, प्रार्थना की, परंतु विद्रोहियों ने उनकी एक न सुनी । वे औरतें और बच्चों को भी मार डालते, किन्तु अच्छा हुआ, नाना साहेब के हस्तक्षेप के कारण यह नहीं हुआ ।

नाना साहेब को मालूम होते-होते जो दुर्घटना घटनी थी, घट गयी । नाना साहेब ने विद्रोहियों को सावधान किया कि वे स्त्रीयों और बच्चों को न मारें । फलस्वरूप एक सौ पच्चीस स्त्रीयाँ और बच्चे मात्र बच गये । नाना साहेब उन्हें अपने भवन में ले गये और कुछ हफ़्तों तक उनके लिए आवश्यक सुविधाओं का प्रबंध किया ।

तात्कालिक रूप से कंपनी का शासन ख़तम हो गया । नाना साहेब उस प्रांत के राजा घोषित हुए । नगर भर में आनंदोत्सव मनाये गये । हर एक ने यही समझा कि ब्रिटिशवालों का पिंड छूट गया; उन शैतानों से छुटकारा मिल गया । सबने यही सोचा कि जीवित ब्रिटिशवाले स्वदेश लौट जायेंगे ।

कानपूर नगर जब विद्रोहियों के विजयोत्सवों से गूँज रहा था तब झान्सी नगर भी चुप बैठा नहीं था ।

-सशेष

उपकार-प्रत्युपकार

सीतारामपुर गाँव में धनदास नामक एक भाग्यवान रहा करता था। उसकी बुद्धि बड़ी ही टेढ़ी थी। उसके विचार बहुत ही बुरे थे। हर दिन किसी न किसी को सताता था और आनंद लूटता था। यह उसका दैनिक कार्यक्रम था। इसके लिए वह पैसे भी खूब खर्च करता था। इस कारण उसके विनोद का कार्यक्रम निर्विघ्न चलता था। कोई न कोई बेचारा मिल ही जाता था।

धनदास अपने घर के चबूतरे पर हर दिन मित्रों के साथ बैठ जाता था। जिन्हे पैसो की ज़रूरत होती थी, वे वहाँ उससे मिलने आते थे। उससे की जानेवाली शारीरिक व मानसिक हिंसा का अनुभव करने के बाद पैसे लेकर चले जाते थे। पैसे तो ले लेते थे, किन्तु वे सुख-संतोष से दूर थे। अपना दुख, क्रोध या असंतृप्ति प्रकट होने नहीं देते थे। यों क्रमशः धनदास के शत्रुओं की संख्या बढ़ती गयी।

उस देश के राजा को बहुरूपिया के रूप में घूमने की आदत थी। एक दिन वह एक दरिद्र किसान के रूप में सीतारामपुर आया। धनदास के बारे में विवरण जाना और उसके पास गया।

तब धनदास यथावत् अपने घर के चबूतरे पर अपने मित्रों के साथ बैठा हुआ था। वेषधारी राजा को देखकर उसने सोचा कि यह कोई ग़रीब किसान है और धन माँगने आया है। उसने राजा से पूछा "तुम्हें कितना धन चाहिये?"

राजा ने निस्संकोच कहा "सौ अशर्फ़ियाँ।"
"तो तुम्हें पहले बैल बनना होगा। तुम्हें अपने सिर पर सींगें लटकानी होंगीं। नादिया की तरह अपने को सजाना होगा। अपने साथ ढोल भी रखो और शहनाई भी। तुम्हें दस घरों के सामने जाकर नादिया की तरह

गिरिजा जोशी

नाचना होगा, खेल दिखाना होगा।''

यह सुनते ही राजा नाराज़ हो गया। वह असली रूप में प्रकट हो गया और कहा ''मैं इस देश का राजा हूँ। मैंने तुम्हारी शरारतों के बारे में सुना है। अब प्रत्यक्ष देख भी चुका हूँ। तुम मानव नहीं, राक्षस हो। मैं तुम्हें उम्र भर क़ैद की सज़ा दे रहा हूँ। भुगतो।''

धनदास का चेहरा इस अप्रत्याशित घटना से विवर्ण हो गया। राजा के पैरों पर गिरकर क्षमा माँगी। किन्तु राजा का क्रोध शांत नहीं हुआ। उसका आवेश जैसे के तैसे बना रहा। यह विषय जानकर ग्रामाधिकारी दौड़ा-दौड़ा वहाँ आया और कहा ''महाराज, बहुत पहले धनदास के पिता ने ज़ोखिम भरी स्थिति में आपके पिता की मदद की। इस कारण राजपरिवार ने, धनदास के परिवार की रक्षा के लिए विशिष्ट सुविधाओं का प्रबंध किया।

मंत्री से आप तत्संबंधी विवरणों की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। इसी वजह से ग्रामाधिकारी होते हुए भी मैं धनदास की करतूतों पर कोई कार्रवाई नहीं ले पा रहा हूँ। उसके दुष्कर्मों को रोक नहीं पा रहा हूँ। अब अकस्मात् उसे दंड देना न्याय-संगत नहीं होगा। अपनी ग़लतियों को सुधारने के लिए इसे एक मौक़ा दीजिये'' यों उसने राजा को समझाया।

तब तक शांत हुए राजा को ग्रामाधिकारी की बातों में न्याय दिखाई पड़ा। धनदास की रक्षा के लिए राजपरिवार ने जो आदेश निकाले, उन आदेशों में अवश्य ही त्रुटियाँ हैं, इसलिए उसने धनदास को एक मौक़ा देना समुचित समझा। उसने धनदास से कहा ''दुष्ट, इस गाँव में जो तुम्हारा कट्टर दुश्मन है, उसकी सेवा में एक महीने तक लगे रहो। जहाँ तक हो सके, उसका उपकार करो। शत्रु का उपकार करने में तुम उससे भी आगे बढ़ जाओगे तो तुम्हें माफ़ करूँगा और छोड़ दूँगा। यह अच्छी तरह से याद रखो कि भविष्य में तुम्हारा व्यवहार ही तुम्हें बचा सकता है।''

पूरा गाँव ही धनदास का शत्रु है। उनमें से किसी को चुने, इसके लिए उसे अधिक माथापच्ची करने की ज़रूरत नहीं पडी। उसे तुरंत प्रमद याद आया।

एक बार प्रमद के पैर में घाव हुआ। सही इलाज न होने के कारण वह घाव फोड़ा बन गया। मेहनत न करने पर उसका पेट भरता नहीं था। बेचारा पैसे कहाँ से ले आये? फिर

भी वह वैद्यक के पास गया और अपना दुखड़ा सुनाया। वैद्यक ने कहा "फोड़ा पक्का हो गया। स्वर्णभस्म के अलावा कोई और दवा काम नहीं करेगी। बीस अशर्फ़ियाँ दोगे तो दवा तैयार करूँगा।"

मेहनत के भरोसे पर जीनेवाले को बीस अशर्फियाँ कौन देगा? अगर कोई दे भी दे तो कर्ज़ कैसे चुकायेगा? प्रमद ने सोचा कि धनदास से सताया भी जाऊँ, तो भी धन-प्राप्ति की गुँजाइश है, इस आशा से वह उसके पास गया।

धनदास ने उससे कहा "तुम्हें बीस अशफ़ियाँ दूँगा। लेकिन मैं स्वयं पहले तुम्हारे फोड़े की चिकित्सा करूँगा।"

प्रमद ने 'हाँ' कह दिया। उसने तुरंत उसे एक खंभे से बाँध दिया। उसके हाथ-पैर बाँध दिये और उसे खड़ा कर दिया। प्रमद के फोड़े पर नमक, मिर्च रंगा और नींबू का रस निचोड़ा।

वह पीड़ा सह नहीं सका। जोर-ज़ोर से चिल्लाने लगा। दर्द से भरी उसकी चिल्लाहटें सुनता हुआ धनदास खुश होने लगा। जब उसका दिल भर गया, तब उसे बंधन-मुक्त कर दिया और बीस अशर्फियाँ दीं।

इसके बाद तुरंत ही प्रमद ने, धनदास की गाल पर चपत मारी और कहा "कोई दूसरा चारा नहीं है, इसलिए मैं तुमसे पैसे ले रहा हूँ। मैं किसी भी हालत में तुम्हारा उपकार याद नहीं रखूँगा। आज से मैं तुमसे प्रतिशोध लेने के लिए ज़िन्दा रहूँगा। तुम मेरे कट्टर दुश्मन हो।"

धनदास ने अब प्रमद को चुना, इसके

बहुत-से कारण हैं। उसे उससे इतनी शत्रुता है कि वह उसका उपकार करेगा भी तो भी वह प्रत्युपकार किसी भी हालत में नहीं करेगा। प्रत्युपकार करना भी चाहे तो वह इस होड़ में जीत नहीं सकता। क्योंकि वह दरिद्र है और वह भाग्यवान। अलावा इसके, गाँव भर के लोगों ने केवल उसे गालियाँ दीं। प्रमद ही एक ऐसा व्यक्ति है, जिसने उसकी गाल पर चपत मारी।

यों सोचकर धनदास ने प्रमद का नाम सुझाया। ग्रामाधिकारी ने प्रमद को तुरंत वहाँ बुलवाया। धर्मदास ने राजा को पूर्व घटना सुनायी और कहा "प्रभू, कट्टर दुश्मन प्रमद की मैं भरसक सहायता करूँगा, उपकार करूँगा। किन्तु उससे साफ़-साफ़ बताइये कि वह कुछ भी मुझे वापस न दे, जो-जो मैं

उसे देनेवाला हूँ।''

राजा, ग्रामाधिकारी तथा गाँव के कुछ प्रमुख व्यक्तियों की उपस्थिति में धनदास और प्रमद के बीच समझौता हुआ, जिसके अनुसार दोनों एक-दूसरे की सहायता करेंगे। राजा ने इसकी ज़िम्मेदारी ग्रामाधिकारी को सौंपी और कहा कि एक महीने के बाद वापस आऊँगा और स्थिति-गतियों का परिशीलन करने के बाद अपना निर्णय सुनाऊँगा।'' यों बताकर राजा चला गया।

उस दिन से धनदास का बरताव बदल गया। पहले उसने प्रमद से अपने किये अपराधों के लिए माफ़ी माँगी। वचन दिया कि भविष्य में वह उसके प्रति कभी भी अन्यायपूर्ण व्यवहार नहीं करेगा। इसके बाद उसने अपना एक सुंदर घर उसे दे दिया। तब से उसके आनंद के लिए हर रोज़ विनोद-कार्यक्रमों का आयोजन किया। उसे दावत पर बुलाया। उसके नाम पर हर दिन मंदिर में पूजाएँ करायीं, अर्चनाएँ करायीं। जब पूरा महीना ख़तम होने जा रहा था तब उसने अपने दो एकड की ज़मीन उसके नाम कर दी और कहा कि मेरे दिये घर में आराम से रहो और खेती करके सुखपूर्वक दिन गुज़ारो।

इस एक महीने के अंदर प्रमद ने प्रत्युपकार करने की कोई कोशिश नहीं की। सारे गाँव ने उसके व्यवहार पर नाक पर उँगली रखी और कहने लगा ''स्वार्थी है। इज़्ज़त देना भी नहीं आता।''

मियाद पूरी होने के बाद राजा सीतारामपुर आया। ग्रामाधिकारी ने सब गाँववालों को बुलाया। राजा ने सबों के सम्मुख धनदास के किये अच्छे कामों की प्रशंसा की और प्रमद से कहा ''लगता है, तुमने धनदास का कोई उपकार नहीं किया।''

प्रमद ने मुस्कुराकर कहा ''समझौते के अनुसार शत्रु की सहायता करनी है। किन्तु पहले ही दिन धनदास ने जब मुझसे क्षमा माँगी, मैंने हमारी शत्रुता का विषय भुला दिया। समझौते के अनुसार सहायता उसकी करनी है, जो मेरा शत्रु है।''

उसके इस उत्तर को सुनकर सब के सब हक्केबक्के रह गये। धनदास ने अंत तक याद रखा कि प्रमद उसका शत्रु है, इसीलिए उसकी सहायता करता रहा। पहले ही दिन से प्रमद अपनी शत्रुता की बात भूल गया। ऐसी स्थिति में धनदास बड़ा आदमी कैसे कहलायेगा? शत्रुता की भावना को भुला देने से बढ़कर

उपकार और क्या हो सकता है।

जब सब यों सोच रहे थे तब धनदास ने उठकर कहा "मानता हूँ कि मैंने इसे सताया। पूर्व प्रमद के जीवन के साथ खिलवाड़ किया। ऐसी प्रबल शत्रु भावना 'मुझे क्षमा करो' कहने मात्र से मिट गयी। ऐसे अच्छे शब्दों का इतना मूल्य हो सकता है, यह मैं जानता नहीं था। यह न जानने के कारण ही मैंने अन्याय व अत्याचारपूर्ण कार्य किये। अपने इस व्यवहार पर बहुत शर्मिंदा हूँ।"

राजा ने धनदास से बैठने को कहा और प्रमद से पूछा "यह मार्के की बात है कि तुम धनदास से अपनी शत्रुता की बात भूल ही गये। इसलिए एक महीने से वह तुम्हारा मित्र है। बिना संकोच के जब तुम्हारा मित्र तुम्हारा उपकार कर रहा है तब क्योंकर प्रत्युपकार करने की भावना तुममें नहीं जगी?"

प्रमद ने उत्तर दिया "प्रभू, जब घाव से मैं पीडित था, तब आवेश में आकर मैंने इसे खूब गालियाँ दीं, गाल पर चपत भी मारी। पर बाद मैं धनदास से क्रोधित नहीं हुआ। इसके दिये पैसों से ही मेरा घाव चंगा हुआ। इस कारण इसके प्रति मेरा कृतज्ञता-भाव है। मुझ जैसे ग़रीबों की समस्याएँ शाश्वत रूप से समाप्त हो जाएँ तो तात्कालिक रूप से किसी भी प्रकार की पीडा को भुला देने की शक्ति हममें होती है। मेरा भय है कि हमारे कष्टों को जानने के लिए कभी-कभार आनेवाले महाराज को हमारी विचार-पद्धति विचित्र लगेगी। अगर मैं कोई भी प्रत्युपकार करता और उसका मूल्य आँका जाता तो धनदास को उम्र कैद की सज़ा हो जाती। इसलिए किसी भी प्रकार के प्रत्युपकार से मैं दूर रहा। मैं समझता हूँ कि यही मेरा प्रत्युपकार है।"

राजा ने प्रमद की उदारता की प्रशंसा की और कहा "सच कहा जाए तो प्रमद ही उपकारों की इस स्पर्धा में जीता। मैं हृदयपूर्वक धनदास को क्षमा करता हूँ। आगे से मैं इस देश के दरिद्रों के लिए समस्त सुविधाओं का प्रबंध करूँगा जिससे धनदास जैसे स्वार्थी, विचित्र मनोस्वभाव के विनोद-प्रिय व्यक्तियों से पाला न पडे।"

यों फ़ैसला सुनाकर राजा राजधानी लौट चला।

फोटो परिचयोक्ति प्रतियोगिता : : पुरस्कार रु. १००

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ, फरवरी, १९९८ के अंक में प्रकाशित की जाएँगी ।

MAHANTESH C. MORABAD

MAHANTESH C. MORABAD

* उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों। * '२५ दिसंबर,९७ तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए। * अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) रु. १००/- का पुरस्कार दिया जायेगा। * दोनों परिचियोक्तियाँ केवल कार्ड पर लिखकर इस पते पर भेजें।

चन्दामामा, चन्दामामा फोटो परिचयोक्ति प्रतियोगिता, मद्रास - २६.

अक्तूबर, १९९७ की प्रतियोगिता के परिणाम

पहला फोटो : **तन को जैसा चाहे मोड दो**

दूसरा फोटो : **भई हमें तो खुला छोड दो**

प्रेषक : **शैलेंद्र कांबले**

ख्रिस्तानंद स्कूल, ब्रह्मपुरी (पो.) जिला चंद्रपुरी, महाराष्ट्र - ४४१ २०६.

चन्दामामा

भारत में वार्षिक चंदा : रु. ७२/-

चन्दा भेजने का पता :

डाल्टन एजन्सीज़, चन्दामामा बिल्डिंग्ज, वडपलनी, मद्रास - ६०० ०२६

Printed by B.V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., Chandamama Buildings, Chennai - 600 026 (India) and Published by B. VISHWANATHA REDDI on behalf of CHANDAMAMA PUBLICATIONS, 188, N.S.K. Salai, Vadapalani, Chennai - 600 026 (India) Editor : N/ REDDI.

CHANDAMAMA (Hindi) December 1997 Regd. No. M. 5452/97
Registrar of News Papers, India. RN 1087 / 57